श्रीराजेन्द्रसूरिजैनग्रन्थमाला-पुष्प १९

जैनाचार्य-श्रीमद्विजयराजेन्द्रसूरीश्वर-निर्मित—

एकसौ आठ बोल का थोकडा।

हिन्दीअनुवादक व संशोधक—
मुनि श्रीयतीन्द्रविजयजी महाराज।

प्रकाशक—
गुरुणीजी श्रीमानश्रीजी और मनोहरश्रीजीकी अन्ते-
वासिनी भावश्रीजी आदि के सदुपदेश से--
आलिराजपुर निवासी—
जेठाजी पूनमचन्दजी—जबरचन्द, लालचन्द्र,
इन्द्रमल, पन्नालाल, हरखचन्द, नन्दुबाई,
धीसा पोरवाड।

श्री आनंद प्रिन्टींग प्रेस भावनगर में मुद्रित

वीरसंवत् २४५२ } राजेन्द्रसूरि सं० २०
प्रथमावृत्ति ५००
{ विक्रमाब्द १९८२ { इस्वीसन् १९२६

' श्रावक लक्षण ए नहीं । "

खाइ पीय सुखें सुइ रहे, डील में बन रह्या सेंटा रे ।
पोसह सामायिकरी विरिया, गलियार थईने बेठा रे ॥१॥

" श्रावक लक्षण ए नहीं ॥ टर ॥ "

धसमसता जिन दर्शन करवा, श्राव भीडी फछोटा रे ।
श्रास-पास नारी निरखता, भाव माहिला खोटा रे ॥२॥

सुगनि धननें छोडने, मागे धान धन धूल रे ।
छोकरा छोकरी कार्यों, श्ररज कर वडी भूल रे ॥३॥

सुनवा धरमने कार्यों, श्रावी विकथा माडे रे ।
रसिक-कथाने साँभली, वैराग्य भावने छाड रे ॥४॥

जो शुद्ध करणी श्रादरी, सूरिराजेन्द्रने ध्यासी रे ।
मेघ वायु परे करमने, नाश करी शिव जासी रे ॥५॥

श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरिजी ।

विराट् जैनवृहद्विश्वकोष अभिधानराजेन्द्रस्य निर्माता–
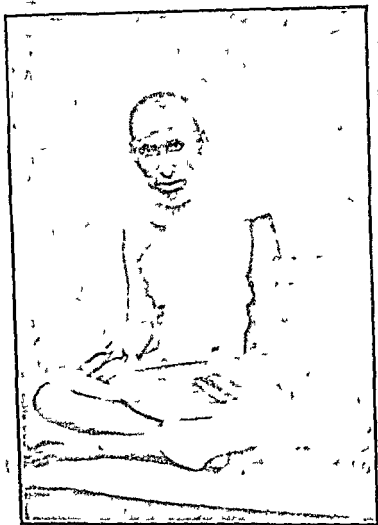
आ श्री १००८ श्रीमद्विजयराजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज।

जन्म संवत् १८८३ निर्वाण संवत् १९६३

प्रस्तावना ।

ाठक-महानुभावो !

" जिस प्रकार आदर्श-आत्माओ (सत्पुरुषों) के जीवन-
रित्र लोकोपकारक होते हैं उसी प्रकार उनके वचनामृत और
नकी ओजस्विनी कलम से लिखे गये ग्रन्थ-रत्न भी लोकोप-
ारक है । आज भारतवर्ष के चारों ओर जो अहिंसा-धर्म की
दूघोषणा सुनाई जा रही है, यह सब बहुश्रुत-पूर्वाचार्यों की
ुमधुर कृतियों का ही फल है । " खडविचार ।

समय समय पर लोगों के बुद्धि-बल को देख कर उनके
हितार्थ विद्वान् दूरदर्शी आचार्योंने भिन्न भिन्न विषय के अनेक
द्य-पद्य संस्कृत और भाषाओं में ग्रन्थ बनाये और वर्त्तमान में
ी बनाये जा रहे हैं जिन्हों के मनन करने और वाँचने से
ोगों को अगाध फायदा पहुच रहा है ।

विश्वपूज्य पूज्यपाद परमयोगिराज श्रीमद् विजय राजेन्द्रसू-
ीश्वरजी महाराजने भी लोकोपकार के लिये भिन्न भिन्न विषय
अनेक ग्रन्थ बनाये हैं, जोकि संस्कृत, प्राकृत और भाषा
ाहित्य के पोषक हैं और जो भारतवर्षीय विद्वानों में प्रशसा की
सोटी पर चढ चुके हैं । प्रस्तुत ग्रन्थ (एकसो आठ बोल का थो-

कहा) उन्हीं म स एक है। इसमें जिन विषयों (बातों) का समावेश किया गया है व इसक विषय-निदर्शन में आलेखित है, अतएव यहाँ उनका विशेष स्पष्टीकरण करना उपयुक्त नहीं समझा जाता।

प्रस्तुत ग्रन्थ, ग्रन्थ-कर्त्ता ने सादी बोली-चाली (मालवी-मारवाड़ी भाषा) में लिखा है, परन्तु आधुनिक समय में हिन्दी का प्रचार चारों तरफ अधिक हो रहा है। इसलिये उक्त ग्रन्थ को हिन्दी में अनुवाद करके प्रकाशित किया गया है। इस हिन्दी अनुवाद में मूल ग्रन्थ-कर्त्ता के आशय का तनिक भी उल्लंघन नहीं, किन्तु पूर्ण रूप से पालन किया गया है।

यह ग्रन्थ स्वतन्त्र कृति नहीं है, किन्तु संग्रह-स्वरूप है। इसका संग्रह जीवविचार, नवतत्त्व, दंडक, कर्मग्रन्थ आदि प्राचीन-अर्वाचीन ग्रन्थों के आधार से हुआ है। जैनों में ऐसे ग्रन्थों को कंठस्थ करने की प्रथा जारी है, खास इसी कारण से इस ग्रन्थ का संग्रह हुआ जान पड़ता है। वास्तव में यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है और जैन मात्र को इसका सीख लेना आवश्यकीय है। क्योंकि इसमें ऐसे ही उपयोगी विषयों का समावेश है, जिनका समय समय पर एक दूसरे के साथ वार्त्तालाप करने में काम पड़ता ही है।

इस अत्युत्तम ग्रन्थ को गुरुणी श्रीमती साध्वीजी श्रीमान-श्रीजी और श्रीमनोहरश्रीजी की अन्तेवासिनी विदुषी साध्वी-श्रीभावश्रीजी आदि के सदुपदेश से आलीराजपुर-निवासी परम श्रद्धालु श्रावकवर्य श्रीयुत जेठाजी पूनमचन्दजी-लालचन्दजी के सुपुत्र पन्नालालजी पोरवाडने सर्व साधारण को फायदा पहुंचाने के

लिये छपा व प्रकाशित किया है । अतएव व धन्यवाद के पात्र हैं और दूसरे श्रीमानों को भी उक्त सद्गृहस्थ के समान सर्वोप-योगी ग्रन्थ प्रकाशित करने के लिये कटिबद्ध होना चाहिये ।

अन्त में परम पूजनीय पूज्यपाद गुरुवर्य **श्रीमद्विजयराजेन्द्र-सूरीश्वरजी** महाराज के रचित ग्रन्थों की सूची देकर इस प्रस्तावना को समाप्त कर दी जाती है । इस सूची में दिये हुए मुद्रित ग्रन्थ ' **श्री अभिधानराजेन्द्र-प्रचारक संस्था,** ठ० बजाजखाना, मु० रतलाम (मालवा) इस पते पर योग्य कीमत में मिल सकते हैं ।

१ **श्रीअभिधानराजेन्द्र**—(बृहज्जैन-प्राकृत-मागधी-श-ब्दार्णव) जैन विश्वकोश । आकार बडा रॉयल चो पजी, पृष्ठ संख्या १०,००० ऊपर है । छपाई और कागज बढिया है । इस महान कोश के सात भाग हैं और समुचित सातों भाग की कीमत २२५) रुपया है जो ग्रन्थ के देखते अत्यल्प है । इसमें प्रथम प्राकृत शब्द, बाद में उसका संस्कृत अनुवाद, फिर लिङ्ग निर्देश, तथा जिन जिन अर्थों में उन शब्दों का जुदे जुदे ग्रन्थों में प्रयोग आया है उन अर्थों का आधार-सह विवेचन, और आगम व ग्रन्थान्तर के सोदाहरण अवतरण, व्युत्पत्ति, तथा व्याख्या, योग्य पद्धति से दर्ज है । यह कोश जैनागम और जैन ग्रन्थ-रत्नों का महा-सागर है, जैनों का ऐसा कोई शब्द व विषय नहीं है जो इस महान् कोश में उपलब्ध न हो । इस कोश के विषय में संसार के प्रसिद्ध प्रसिद्ध विद्वानों के आज पर्यन्त कोई दोसौ प्रशंसा-पत्र आ चुके हैं, उनमें से प्रोफेसर सर जोर्ज ग्रियर्सन साहब के सी आई ई कैम्बर्ली (इग्लेगड) के

तारीख २२ दिसम्बर १६२४ के एक अंग्रेजी पत्र का थोड़ासा अंश यहाँ उद्धृत कर दिया जाता है—

" I must congratulate you on the fact that this magnificent work is nearing completion, It has been of great use to me in my studies of Jain Prakrit

(Sd) George A Grierson

इस महान् कोश के प्रत्येक भाग की कीमत इस प्रकार है—

प्रथम—भाग	२५)	पञ्चम—भाग	३०)
द्वितीय—भाग	३५)	षष्ठम—भाग	३८)
तृतीय—भाग	३५)	सप्तम—भाग	३८)
चतुर्थ—भाग	३६)		

सातों भाग एक साथ लेने वालों को दश रुपया कमीशन मिलता है ।

२ कल्पसूत्र—बालावबोध—आकार बड़ा सुपर रोयल बारह पेजी । छपाई और कागज अच्छा है । पृष्ठ संख्या ५०४, और पक्की जिल्द बंधी हुई है, कीमत ५) रुपया है । वर्तमान में कल्पसूत्र के जितने भाषान्तर उपलब्ध हैं उन सभी से यह बालावबोध बढ़िया और रोचक है । इसकी रचना, कल्पसूत्र के उपर बनी हुई प्राचीन संस्कृत टीका और चूर्णि आदि का आधार ले कर की गई है । प्रथमावृत्ति में इसकी पन्द्रह सौ कोपी छपी थी, परन्तु वे सब छ महिना के दरमियान ही खलास हो गई । बस यही इस

की उपयोगिता का प्रत्यक्ष प्रमाण है, अब यह एक एक पुस्तक का वीस वीस रुपया देन पर भी कहीं नहीं मिल सकता ।

३ प्राकृतव्याकरणविवृति—पद्यबद्ध–संस्कृत। श्रीहेमचन्द्राचार्य रचित प्राकृत व्याकरण की यह अति सरल छन्दोबद्ध टीका है। यह विवृति अभिधानराजेन्द्र कोश के प्रथम भाग में प्रथम परिशिष्ट तरीके रक्खी गई है। प्राकृत–भाषा का अभ्यास करने क लिये यह विवृत्ति अत्यन्त उपयोगी है।

४ पर्युषणाष्टाह्निकाव्याख्यान–भाषा। पत्राकार सुपर रोयल बारह पजी, पृष्ठ संख्या ११८, और कीमत दश आना है। खरतर गच्छीय–क्षमाकल्याण वाचक रचित संस्कृत पर्युषणाष्टाह्निका व्याख्यान का यह मारवाडी भाषा मे भाषान्तर है और पर्युषण महापर्व के शरू के तीन दीनों में श्रावक श्राविकाओं क वाँचने के लिये तैयार किया गया है। यह मूल सहित सुन्दर टाईप और कागज में छपा है।

५ श्रीदेववन्दनमाला—आकार डेमी आठ पजी, पृष्ठ संख्या १३३, और मूल्य–सदुपयोग है। छपाइ, कागज अच्छा और जिल्द पक्की बंधी हुई है। इस पुस्तक मे श्रीज्ञानपचमी, श्रीचोमासी, श्रीसिद्धाचल, श्रीनवपद ओली, और श्रीदीवाली, एव पाच देव वन्दन विधि सहित दर्ज है। अब यह अप्राप्य है परन्तु थोड ही रोजमे इसकी तीसरी आवृत्ति छपन वाली है जो एक रुपया कीमत से मिल सकगी।

६ श्रीतत्त्वविवेक—आकार रायल १६ पजी, पृष्ठ संख्या

१२८, और छपाइ सफाइ अच्छी है। इसमें देव, गुरु और धर्म, इन तत्वों का स्वरूप, बड़ी सरल, सरस भाषा में योग्यतापूर्वक दिखलाया गया है। यह पुस्तक अब नहीं मिल सकती। पर यह पुस्तक अत्यन्त उपादेय है।

७ धनसार चोपी और अघटकुँवर चोपी—आकार रॉयल १६ पेजी, पृष्ठ सख्या ४०, और कीमत तीन आना है। छपाइ, सफाइ और कागज अच्छा है। इसमें प्रथम चोपी, चैत्य-भक्ति का फल और द्वितीय पुन्यकर्म का फल दिखलाने वाली है। पहली की दोहा सहित ११ ढालें और दूसरी की १३ ढालें है जो भिन्न भिन्न दशीयों (रागों) में गुम्फित हैं और जिनमें सुमधुर और सालङ्कारिक भाषा में विषय वर्णित है।

६ श्री राजेन्द्रसूर्योदय—(गुजराती) आकार डमी आठ पजी पृष्ठ सख्या ५८, और छपाइ, कागज सुन्दर है। क़ीमत—अमूल्य है। सन् १९६०क सूरत के चातुर्मास में विपक्षी लोगो के साथ चर्चा—वाद हुआ था, उसका सत्य हाल उक्त पुस्तक में दर्ज है।

१० कमलप्रभा—शुद्धरहस्य—आकार डमी ८ पजी, पृष्ठ सख्या ४१, और छपाइ, कागज सुन्दर है। कीमत दो आना है। ढूढकों की पूज्या पार्वती की बनाइ हुइ 'सत्यार्थचन्द्रोदय' नामक किताब में महानिशीथसूत्रोक्त कमलप्रभाचार्य के विषय में जो कुयुक्तियाँ की गइ हैं, उक्त पुस्तक में उन्हीं का युक्ति पुरस्सर सप्रमाण खडन मार्मिक- भाषा में किया गया है।

११ श्रीसिद्धचक्र-पूजा—आकार रॉयल १६ पेजी, पृष्ठ

सख्या १२, और छपाई, सफाई सुन्दर है। कीमत तीन आना है। इसमे अरिहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप, इन नौ पदों के नाना रागों में गुण-वर्णन किये गये हैं। पूजा सुन्दर और भाव पूर्ण है।

१२ श्रीमहावीर-पचकल्याणकपूजा—आकार डमी ८ पेजी, पृष्ट सख्या १०, और मूल्य एक आना है। इसकी तीन आवृत्तियाँ निकल चुकी हैं। इसमें अन्तिम तीर्थंकर भगवान श्री महावीरस्वामी के पाच कल्याणकों का वर्णन बडी उत्तम रीती से अनेक रागों में किया गया है।

१३ प्रश्नोत्तर-पुष्पवाटिका—आकार डमी १२ पेजी, पृष्ट सख्या ६२, और छपाई, कागज बहुत अच्छा है। मूल्य सदुपयोग। इसमे धर्म सम्बन्धी नाना विषयों के अनेक प्रश्नोत्तर है, जो शास्त्रीय प्रमाणों के साथ मारवाडी भाषा में लिखे गये हैं। यह पुस्तक अब नहीं मिल सकती।

१४ श्रीजिनोपदेशमञ्जरी—आकार क्राउन १६ पेजी, पृष्ट सख्या ७०, और छपाई, कागज सुन्दर है। मूल्य चार आना है। इसमें दिलचस्प कथाओं के द्वारा भगवत्प्रणित यथार्थ तत्त्वों को अच्छी तरह समझाये गये है। कथाएँ इतनी रोचक हैं कि एक वार हाथ में लिये बाद पूरी बाचे विना छोडने को जी नहीं चाहता।

१५ चोवीसी-जिनस्तवन—वर्तमान कालीन चोवीस जिनेन्द्र-भगवन्तों के ये स्तवन हैं। इनमें कर्त्ताने अध्यात्मरस और आत्म-स्वरूप को कूट कूट करके भर दिया है, जिसका

वास्तविक स्वरूप विना गुरुगम के मालूम नहीं हो सकता। ये स्तवन अलग पुस्तकरूप से नहीं, किन्तु भीनमालसंघ की तरफ से प्रकाशित 'विविध पूजा–संग्रह' नामक पुस्तक में दर्ज हैं। इनके अलावा और भी आपके अनेक स्तवन बनाये हुए हैं जो जिन-गुणमंजूषा आदि पुस्तकों में छप चुके हैं।

१६ चैत्यवंदन चोवीसी और १७ चोवीस जिनस्तुतिः— विविध छन्दों में ये चोवीस तीर्थंकरों के चैत्यवन्दन और स्तुतियाँ हैं। इनके सिवाय छुटकर चैत्यवन्दन और स्तुतिजोड़ भी अनेक हैं जो विविध पूजासंग्रह आदि पुस्तकों में दर्ज हैं। इसी प्रकार भावपूर्ण सिज्झाएँ भी आपकी बनाई हुई उन्हीं पुस्तकों (जिनगुणमंजूषा आदि) में छप चुकी है।

१८ अक्षयतृतीया–कथा— गद्य संस्कृत में यह कथा अत्यन्त सरल है जिसे थोड़ा संस्कृत जाननेवाले भी अच्छी तरह बाँच सकते हैं। यह कथा अभिधान राजेन्द्र कोश के प्रथम भाग में 'अक्खयतइया' शब्द पर रक्खी गई है।

१९ एकसौ आठ बोल का थोकड़ा— आकार क्राउन १६ पेजी, पृष्ठ संख्या १८६, और छपाई, कागज सुन्दर है। मूल्य–सदुपयोग है। इसमें जैन मात्र को कंठस्थ करने योग्य १०८ बातों का संग्रह है जिन्हें याद कर लेने से मनुष्य सैद्धान्तिक शैली में सुगमता से प्रवेश कर सकता है और एक ज्ञाता की गिनती में आ सकता है।

२० संक्षिप्त–प्राकृतशब्द–रूपावलि— यह प्राकृत के अ-

भ्यासियों के लिये बड़ काम की चीज है। इसमें प्राकृत के विभक्ति—परत्व अनेक वैकल्पिक रूप दिखाये गये हैं जिन्हों का जानना अत्यन्त आवश्यकीय है। इस प्रकार की प्राकृत शब्द रूपावलि आज पर्यंत किसी के तरफ से प्रकाशित नहीं हुई। यह अभिधान राजेन्द्र कोश के प्रथम भाग में तीसरे परिशिष्ट तरीके रक्खी गई है।

अप्रकाशित–संस्कृत ग्रन्थ साहित्य––

२१ पाइअसद्दंबुहि (प्राकृतशब्दाम्बुधि) बृहज्जैन कोश[१], २२ सर्पैतस्करमन्त्र (श्लोकबद्ध), २३ चन्द्रिकाधातुपाठ श्लोकबद्ध, २४ शब्दकौमुदी (पद्य), २५ कल्याणमन्दिर–प्रक्रियाटीका, २६ सकलैश्वर्यस्तोत्र–सटीक, २७ उपदेश रत्नसार गद्य, २८ दीपमालिका कल्पसार, २९ सव्वसगहपगरण (गाथाबद्ध), ३० उत्तमकुमारोपन्यास, ३१ होलिकाव्याख्यान–गद्य।

अप्रसिद्ध–भाषा ग्रन्थ साहित्य––

३२ उपासक दशाङ्ग–बालावबोध, ३३ गच्छाचार पयन्ना वृत्ति–भाषान्तर, ३४ सिद्धान्तसारसागर (बोलसंग्रह), ३५ सिद्धान्तप्रकाश, ३६ चार कर्मग्रन्थ–अक्षरार्थ, ३७ स्वरोदय

१ इसमें प्रथम प्राकृत शब्द, फिर संस्कृत–अनुवाद, बाद में लिङ्गनिर्देश और हिन्दी में उसका अर्थ दिया गया है। अन्दाजन ८० ००० हजार प्राकृत शब्दों का इसमें वर्णानुक्रम से संग्रह किया गया है।

ज्ञानयंत्रावली, ३८ त्रैलोक्यदीपिका–यंत्रावली, ३६ बासठ मार्गणा–विचार, ४० षडावश्यक अक्षरार्थ, ४१ मुनिपतिचोपी, ४२ प्रभूचोपी, ४३ कथासंग्रह पचाख्यान–सार।

अन्तिमसूचना—

यह 'एकसौ आठ बोलका थोकडा' नामक अत्युपयोगी पुस्तक खास मुफ्त भेट देने के लिये छपाई गई है। अतएव जिन महानुभावों को इसकी आवश्यकता हो, उन्हें शा जेठाजी पूनम चन्दजी, मु० आलीराजपुर (दाहोद) इस पते पर एक पत्र व साथ टिकीट भेज कर शीघ्रता से मगा लेना चाहिये।

संवत १९८२ कार्तिक शुक्ला ५ } मुनि यतीन्द्रविजय मु० कुकसी (नामाड़)

मुनिप्रवर श्रीमद्यतीन्द्रविजयजी महाराज।

जन्म संवत् १९४० दीक्षा सं. १९५४

श्रीगुरुदेव–स्तुति–कवित ।

इहि ससार समुद्र पे अन्र मोह माया जल पूर अपार,
तृष्णारूप किलोल चढे जहँ अष्ट महामद मोह अटार ।
भानुकरूपि जहाज डुबोवन बाजत पौनका काल करारा,
धन्यमुनि गहन समुद्र में राजेन्द्रसूरिगुर तारनहार ॥

चढयो है गगन ऐसो, ज्ञानरूपी मेघ जैसो,
दयारूपी बीज के झबक्सो सुहायो है ।
समारूपी वायु शुद्ध, व्रतरूपी गाज बुद्ध,
निश्चे व्यवहाररूप वचन–जल वरसायो है ॥

भविकरूपी मोर जोर, कर्म कर अति सोर,
जन्म जरा मृत्युरूप ताप को मिटायो है ।
श्राद्धभूमि शोधन को, समकिततरु फूलन को,
विजयराजेन्द्रसूरि वरसा बन आयो है ॥ २ ॥

सोहन सिंगार सजि अति सुन्दर हाथ गही समता की थारी,
भाव विशाल रु गुण मुक्ताफल लेइ चलि गुरु वन्दन प्यारी ।
शीलहू झाझर झनकार हुओ जब भाग गइ कुशोक धुतारी,
सूरिराजेन्द्र के पॉव पडी तब दूर भई दुरगति की वारी ॥ ३ ॥

मेघघटा सुछटा असमान ज्यु सयम साज मुनिमग धारी,
भूरि जना रिछपाल कृपाल जु अमृत वैन सुताप विडारी ।
काल कराल कुलिंग विखडन, मडन शासन जैन सुधारी,
पचम काल चले शुभ चालसु सूरिविजयराजेन्द्रजी तारी ॥ ४ ॥

विषयनिदर्शनम् ।

—※(◎)※—

श्रीअर्हं नम ।

जैनाचार्य-श्रीमद्विजयराजेन्द्रसूरीश्वरजी—

सकलित—

एकसौ आठ बोल का थोकड़ा

—✻◎◎◎✻—

१ गति चार—

देवगति १, मनुष्यगति २, तिर्यंचगति ३, नरकगति ४

२ जाति पाच—

एकेन्द्रियजाति १, द्वीन्द्रिय जाति २, त्रीन्द्रिय जाति ३, चतुरिन्द्रियजाति ४, पचेन्द्रिय जाति ५

३ इन्द्रिय पाच—

स्पर्शेन्द्रिय १, रसनेन्द्रिय २, घ्राणेन्द्रिय ३, चक्षुरिन्द्रिय ४, श्रोत्रेन्द्रिय ५.

४ काया छ —

पृथ्वीकाय १, अप्काय २, तेजस्काय ३, वायुकाय ४, वनस्पतिकाय ५, त्रसकाय ६.

१—शरीर, २—जिह्वा, ३—नाक, ४—नेत्र, ५—कान, ६—भूमि के जीव, ७—जल के जीव, ८—अग्नी के जीव, ९—हवा के जीव, १० फल, फूल, पत्र, बीज, लता, आदि के जीव, ११—द्वीन्द्रियादि जीव

५ योग पन्द्रह—

सत्यमनोयोग १, असत्यमनोयोग २, मिश्रमनोयोग ३, व्यवहारमनोयोग ४, सत्यवचनयोग ५, असत्यवचनयोग ६, मिश्रवचनयोग ७, व्यवहारवचनयोग ८, औदारिककाययोग ९, औदारिकमिश्रकाययोग १०, वैक्रियकाययोग ११, वैक्रियमिश्रकाययोग १२, आहारिककाययोग १३, आहारिकमिश्रकाययोग १४, कार्मणकाययोग १५

६ वेद तीन—

स्त्रीवेद १, पुरुषवेद २, नपुसक वेद ३

७ कषाय चार—

अनंतानुबन्धी-क्रोध, मान, माया, लोभ १, अप्रत्याख्यानी-क्रोध, मान, माया, लोभ २, प्रत्याख्यानी-क्रोध, मान, माया, लोभ ३, संज्वलन-क्रोध, मान, माया, लोभ

८ ज्ञान पाच, अज्ञान तीन—

मतिज्ञान १, श्रुतज्ञान २, अवधिज्ञान ३, मन.पर्यवज्ञान ४, केवलज्ञान ५ मतिअज्ञान १, श्रुतअज्ञान २, विभगअज्ञान ३.

१—पत्थर की रेखा समान, यावज्जीव तक रहने नरक मे ले जाने और आत्मगुण का नाश करने वाला २—मट्टी की रेखा समान एक वर्ष तक रहने, व्रतों व उच्च को रोकने और तिर्यंच मे ले जाने वाला, ३—रेत की रेखा समान, छ महिना तक रहने चारित्रको रोकने और मनुष्यगति में ले जाने वाला ४—जलरेखा के समान, केवलज्ञान का रोकने, पन्द्रह दिन तक रहने और देवगति म ले जानेवाला

९ चारित्र आठ—

सामायिक चारित्र १, छेदोपस्थापनीय चारित्र २, परिहारविशुद्धि चारित्र ३, सूक्ष्मसपराय चारित्र ४, यथाख्यात चारित्र ५, देशविरति चारित्र ६, सर्वविरति चारित्र ७, अविरति चारित्र ८

१० दर्शन चार—

चक्षुदर्शन १, अचक्षुदर्शन २, अवधिदर्शन ३, केवलदर्शन ४.

११ लेश्या छ —

कृष्णलेश्या १, नीललेश्या २, कापोतलेश्या ३, तेजुलेश्या ४, पद्मलेश्या ५, शुक्लेश्या ६.

१२ सम्यक्त्व पाच—

क्षायिक सम्यक्त्व १, उपशम सम्यक्त्व २, क्षयोपशम सम्यक्त्व ३, सासदन सम्यक्त्व ४, वेदक सम्यक्त्व ५

१३ राशि दो—

भव्यराशि-मोक्ष जाने वाले १, अभव्यराशि-मोक्ष नहीं जाने वाले २.

१४ जीवों के दो भेद—

सज्ञीजीव-जो मन सहित हैं १, असंज्ञी-जो मन रहित हैं २, अथवा आहारिक-आहार करने वाले ससारी

१—पहली तीन अशुभ और पीछली तीन शुभ है ।

कर्म युक्त जीव १, अणाहारिक—आहार न करने वाले मोक्ष के जीव २

१९ गुणस्थान चौदह—

मिथ्यात्व गुणठाणा १, सासादन गुणठाणा २, मिश्र गुणठाणा ३, सम्यग्दृष्टी गुणठाणा ४, देशविरति गुणठाणा ५, सर्वविरति गुणठाणा ६, अप्रमत्त गुणठाणा ७, निर्वृत्ति बादर गुणठाणा ८, अनिवृत्तिबादर गुणठाणा ९, सूक्ष्म-संपराय गुणठाणा १०, उपशांतमोह गुणठाणा ११, क्षीण-मोह गुणठाणा १२, सयोगीकेवली गुणठाणा १३, अयोगी केवली गुणठाणा १४

१६ उपयोग बारह

पांच ज्ञान तीन अज्ञान, और चार दर्शन ये १२

१७ पक्ष दोय—

शुक्लपक्षी जीव—जिन्हों का अर्द्धपुद्गल काल घूमना बाकी रह गया है १, कृष्णपक्षी जीव—जिन्हों को अनंत पुद्गल परावर्त्तन संसार घूमना है।

१८ भाव पांच—

उपशमभाव १, क्षायकभाव २, क्षयोपशमभाव ३, ओद-यिकभाव ४, पारिणामिकभाव ५

१ उपशमभाव के दो भेद—उपशमसम्यक्त्व १, उप-शमचारित्र २

इनके नाम नम्बर ८–१० में लिख जा चुके हैं

२ क्षायकभाव के नो भेद—केवलज्ञान १, केवलदर्शन २, क्षायिकसम्यक्त्व ३, क्षायिकचारित्र ४, दानलब्धी ५, लाभलब्धी ६, भोगलब्धी ७, उपभोगलब्धी ८, वीर्यलब्धी ९.

३ क्षयोपशमभाव के अठारह भेद—मतिज्ञान १, श्रुतज्ञान २, अवधिज्ञान ३, मनःपर्यवज्ञान ४, मतिअज्ञान ५, श्रुतअज्ञान ६, विभंगज्ञान ७, चक्षुदर्शन ८, अचक्षुदर्शन ९, अवधिदर्शन १०, दानलब्धी ११, लाभलब्धी १२, भोगलब्धी १३, उपभोगलब्धी १४, वीर्यलब्धी १५, देशविरति १६, सर्वविरति १७, क्षयोपशमसम्यक्त्व १८

४ औदयिकभाव के इक्कीस भेद—देवगति १, मनुष्यगति २, तिर्यंचगति ३, नरकगति ४, क्रोध ५, मान ६, माया ७, लोभ ८, स्त्रीवेद ९, पुरुषवेद १०, नपुंसकवेद ११, कृष्णलेश्या १२, नीललेश्या १३, कापोतलेश्या १४, तेजुलेश्या १५, पद्मलेश्या १६, शुक्ललेश्या १७, मिथ्यात्व १८, असिद्धत्व १९, अज्ञान २०, अविरति २१.

५ पारिणामिकभाव के तीन भेद—जीवत्व १, भव्यत्व २ अभव्यत्व ३ ये सब मिल कर ५३ भेद हुए

१९ आत्मा आठ—

द्रव्य आत्मा १, कषाय आत्मा २, योग आत्मा ३, उपयोग आत्मा ४, ज्ञान आत्मा ५, दर्शन आत्मा ६, चारित्र आत्मा ७, वीर्य आत्मा ८.

२० दृष्टि तीन—

सम्यक्त्वदृष्टी १, मिथ्यादृष्टी २, मिश्रदृष्टी ३

२१ वीर्य तीन—

बालवीर्य १, पंडितवीर्य २, बालपंडितवीर्य ३

२२ जीव के चउदह भेद—

एकेन्द्रियसूक्ष्म १, एकेन्द्रियवादर २, सन्नीपचेन्द्रिय ३, असन्नीपचेन्द्रिय ४, द्वीन्द्रिय ५, त्रीन्द्रिय ६, चतुरिन्द्रिय ७, इन सातों के पर्याप्ता अपर्याप्ता मिल के १४.

२३ अजीव के चौदह भेद—

धर्मास्तिकाय—खध १, देश २, प्रदेश ३, अधर्मास्तिकाय—खध ४, देश ५, प्रदेश ६ आकाशास्तिकाय—खध ७, देश ८, प्रदेश ९, पुद्गलास्तिकाय—खध १०, देश ११, प्रदेश १२, परमाणु १३, काल १४

२४ कर्म आठ—

ज्ञानावरणीय १, दर्शनावरणीय २, वेदनीय ३, मोहनीय ४, अंतराय ५, नामकर्म ६, गोत्रकर्म ७, आयुष्कर्म ८

१ ज्ञानावरणीय के पांच भेद—मतिज्ञानावरणीय १, श्रुतज्ञानावरणीय २, अवधिज्ञानावरणीय ३, मनःपर्यव ज्ञानावरणीय ४, केवलज्ञानावरणीय ५

२ दर्शनावरणीय के नो भेद—चक्षुदर्शनावरणीय १, अचक्षुदर्शनावरणीय २, अवधिदर्शनावरणीय ३, केवल

दर्शनावरणीय ४, निद्रा ५, निद्रा-निद्रा ६, प्रचला ७, प्रचला-प्रचला ८, स्त्यानर्द्धी ९

३ वेदनीय के दो भेद—शातावेदनीय १, अशातावेदनीय २.

४ मोहनीय के अठाईस भेद—अनंतानुबन्धी—क्रोध १, मान २, माया ३, लोभ ४, अप्रत्याख्यानी—क्रोध ५, मान ६, माया ७, लोभ ८, प्रत्याख्यानी—क्रोध ९, मान १०, माया ११, लोभ १२, सज्वलन—क्रोध १३, मान १४, माया १५, लोभ १६, हास्य १७, रति १८, अरति १९, भय २०, शोक २१, जुगुप्सा २२, स्त्रीवेद २३, पुरुषवेद २४, नपुंसकवेद २५, मिथ्यात्वमोहनीय २६, सम्यक्त्वमोहनीय २७, मिश्रमोहनीय २८.

५ अंतराय कर्म के पाच भेद—दानांतराय १, लाभांतराय २, भोगांतराय ३ उपभोगांतराय ४, वीर्यांतराय ५

६ नामकर्म के एकसो तीन भेद—देवगति १, मनुष्यगति २, तिर्यंचगति ३, नरकगति ४, एकेन्द्रियजाति ५, द्वीन्द्रियजाति ६, त्रीन्द्रियजाति ७, चतुरिन्द्रियजाति ८, पचेन्द्रियजाति ९, औदारिकशरीर १०, वैक्रियशरीर ११, आहारकशरीर १२, तैजसशरीर १३, कार्मणशरीर १४, औदारिकागोपाङ्ग १५, वैक्रियागोपाग १६, आहारिकागोपाग १७, औदारिकऔदारिकबन्धन १८, वैक्रियवैक्रियबन्धन १९, आहारिकआहारिकबन्धन २०, तैजस-

१ सभी प्रकृतियों में 'नामकर्म' इतना जोडकर बोलना

तैजसबन्धन २१, कार्मणकार्मणबन्धन २२, औदारिकतैजसबंधन २३, वैक्रियतैजसबंधन २४, आहारकतैजस बंधन २५, कार्मणतैजसबंधन २६, औदारिककार्मणबंधन २७, वैक्रियकार्मणबंधन २८, आहारिककार्मणबंधन २९, औदारिकतैजसकार्मणबंधन ३०, वैक्रियतैजसकार्मणबंधन ३१, आहारिकतैजसकार्मणबंधन ३२, उदारिकसंघातन ३३, वैक्रियसंघातन ३४, आहारकसंघातन ३५, तैजससंघातन ३६, कार्मणसंघातन ३७, वज्रऋषभनाराचसंघयण ३८, ऋषभनाराचसंघयण ३९, नाराचसंघयण ४०, अर्द्धनाराचसंघयण ४१, कीलिकासंघयण ४२, छेवट्टासंघयण ४३, समचतुरस्रसंस्थान ४४, न्यग्रोधसंस्थान ४५, सादिसंस्थान ४६, कुब्जसंस्थान ४७, वामनसंस्थान ४८, हुंडकसंस्थान ४९, श्वेतवर्ण ५०, कृष्णवर्ण ५१, नीलवर्ण ५२, पीतवर्ण ५३, रक्तवर्ण ५४, सुरभिगंध ५५, दुरभिगंध ५६, तिक्तरस ५७, कटुकरस ५८, कषायरस ५९, आम्लरस ६०, मधुररस ६१, गुरुस्पर्श ६२, लघुस्पर्श ६३, कोमलस्पर्श ६४, खरस्पर्श ६५, शीतस्पर्श ६६, उष्णस्पर्श ६७, स्निग्धस्पर्श ६८, रूक्षस्पर्श ६९, देवानुपूर्वी ७०, मनुष्यानुपूर्वी ७१, तिर्यगानुपूर्वी ७२, नरकानुपूर्वी ७३, शुभविहायोगति ७४, अशुभविहायोगति ७५, पराघात ७६, उच्छ्वास ७७, आतप ७८, उद्योत ७९, अगुरुलघु ८०, तीर्थंकर (जिननाम) ८१, निर्माण ८२, उपघात ८३, त्रस ८४,

बादर ८५, पर्याप्ति ८६, प्रत्येक ८७, स्थिर ८८, शुभ ८९, सौभाग्य ९०, सुस्वर ९१, आदेय ९२, यशःकीर्ति ९३ स्थावर ९४, सूक्ष्म ९५, अपर्याप्ति ९६, साधारण ९७, अस्थिर ९८, अशुभ ९९, दौर्भाग्य १००, दुःस्वर १०१, अनादेय १०२, अयश कीर्ति १०३

७ गोत्रकर्म के दो भेद—नीचगोत्र १, उच्चगोत्र २

८ आयुष्कर्म के चार भेद—देवायु १, मनुष्यायु २, तिर्यंचायु ३, नरकायु ४ एवं आठो कर्म की १५८ प्रकृतियाँ समझना चाहिये

२५ तत्त्व नौ—

जीवतत्त्व १, अजीवतत्त्व २, पुन्यतत्त्व ३, पापतत्त्व ४, आस्रवतत्त्व ५, संवरतत्त्व ६, बन्धतत्त्व ७, निर्जरातत्त्व ८, मोक्षतत्त्व ९

३ पुन्यबंध नौ प्रकार से होता है—१ अन्नदान, २ जलदान, ३ वसतिदान, ४ शयनासनदान, ५ वस्त्रदान, ६ मानसिक शुभसंकल्प, ७ शुभभाषण, ८ कायिक शुभव्यापार, ९ गुणीजनवन्दन

पुन्य बयालीस प्रकार से भोगा जाता है—शातावेदनीय १, उच्च-गोत्र २, मनुष्यगति ३, मनुष्यानुपूर्वी ४, देवगति ५, देवानुपूर्वी ६, पंचेन्द्रियजाति ७, औदारिकशरीर ८, वैक्रियशरीर ९, आहारकशरीर १०, तैजसशरीर ११,

१–२ जीवतत्त्व, अजीवतत्त्व के भेद नंबर २२–२३ में देखो-

नार्माणशरीर १२, औदारिकांगोपांग १३, वैक्रियांगोपांग १४, आहारकांगोपांग १५, वज्रऋषभनाराचसंघयण १६, समचतुरस्रसंस्थान १७, शुभवर्ण १८, सुरभिगंध १९, शुभरस २०, शुभस्पर्श २१, अगुरुलघु २२, पराघात २३, श्वासोच्छ्वास २४, आतप २५, उद्योत २६, शुभविहायोगति २७, निर्माण २८ त्रस २९, बादर ३०, पर्याप्ति ३१, प्रत्येक ३२, स्थिर ३३, शुभ ३४, सौभाग्य ३५, सुस्वर ३६, आदेय ३७, यश कीर्त्ति ३८ देवायु ३९, मनुष्यायु ४०, तिर्यंचायु ४१, तीर्थंकर नाम ४२

४ पापबंध अठारह प्रकार से होता है—जीवहिंसा १, असत्य २, चोरी ३, मैथुन ४, परिग्रह ५, क्रोध ६, मान ७, माया ८, लोभ ९, राग १०, द्वेष ११, कलह १२, अभ्याख्यान, १३, पैशुन्य १४, रति–अरति १५ परपरिवाद १६, मायामृषावाद १७, मिथ्यात्वशल्य १८

पाप बयासी प्रकार से भोगा जाता है—मतिज्ञानावरणीय १, श्रुतज्ञानावरणीय २, केवलज्ञानावरणीय ३, मन पर्यव ज्ञानावरणीय ४, केवलज्ञानावरणीय ५, दानांतराय ६,

---

१–सफेद, पीला, लाल, ये तीन शुभ २–खट्टा, मीठा, कषायला ये तीन शुभरस ३–हलका, कोमल, उष्ण, चिकना ये चार शुभ स्पर्श है ४–कलंक देना, ५–चुगली खाना, ६–हर्ष–शोक, ७–दूसराकी निंदा करना, ८–कपटयुक्त झूठ बोलना, ९–कुदेव, कुगुरु, कुधर्मको सेवन करने की अभिलाषा।

लाभांतराय ७, भोगांतराय ८, उपभोगांतराय ६, वीर्यांतराय १०, चक्षुर्दर्शनावरणीय ११, अचक्षुर्दर्शनावरणीय १२, अवधिदर्शनावरणीय १३, केवलदर्शनावरणीय १४, निद्रा १५, निद्रानिद्रा १६, प्रचला १७, प्रचलाप्रचला १८, थीणद्धी १९, नीचगोत्र २०, असातावेदनीय २१, मिथ्यात्वमोहनीय २२, स्थावरनाम २३, सूक्ष्म २४, अपर्याप्त २५, साधारण २६, अस्थिर २७, अशुभ २८, दौर्भाग्य २९, दुःस्वर ३०, अनादेय ३१, अयश कीर्त्ति ३२, नरकगति ३३, नरकानुपूर्वी ३४, नरकायु ३५, अनंतानुबन्धी-क्रोध ३६, मान ३७, माया ३८, लोभ ३९, अप्रत्याख्यानी-क्रोध ४०, मान ४१, माया ४२, लोभ ४३, प्रत्याख्यानी-क्रोध ४४, मान ४५, माया ४६, लोभ ४७, सञ्ज्वलन-क्रोध ४८, मान ४९, माया ५०, लोभ ५१, हास्य ५२, रति ५३, अरति ५४, भय ५५, शोक ५६, जुगुप्सा ५७, पुरुषवेद ५८, स्त्रीवेद ५९, नपुंसकवेद ६०, तिर्यंचगति ६१, तिर्यंचानुपूर्वी ६२, एकेन्द्रियजाति ६३, द्वीन्द्रियजाति ६४, त्रीन्द्रियजाति ६५, चतुरिन्द्रिजाति ६६, अशुभविहायोगति ६७, अशुभवर्ण ६८, दुरभिगन्ध ६९, अशुभरस ७०, अशुभस्पर्श ७१, ऋषभनाराचसंघयण ७२, नाराचसंघयण ७३, अर्द्धनाराचसंघयण ७४, न्यग्रोधसंस्थान ७५,

१—काला, नीला, २—तीखा, कडुवा, ३—भारी, खरदरा, ठंडा, और लूखा

सादिसस्थान ७=, वामनसस्थान ७६, कुजसस्थान ८०, हुडकसस्थान ८१, उपघात ८४.

५ आश्रवतत्त्व के बयालास भेद—पाच इन्द्रिय ५, चार कषाय, ९, जीवहिंसा १०, असत्य ११, चोरी १२, मैथुन १३, परिग्रह १४, मनोयोग १५, वचनयोग १६, काययोग १७, कायिकीक्रिया १८, अधिकरणकीक्रिया १९, प्रद्वेषिकीक्रिया २०, पारितापनिकीक्रिया २१, प्राणातिपातिकी क्रिया २२, आरंभिकीक्रिया, २३, परिग्रहिकीक्रिया २४, मायाप्रत्ययिकीक्रिया २५, मिथ्या दर्शनप्रत्ययिकीक्रिया २६, अप्रत्याख्यानिकीक्रिया २७, दृष्टिकीक्रिया २८, स्पृष्टिकीक्रिया २९, प्रातीत्यप्रत्ययिकी क्रिया ३० सामतोपनिपातिकीक्रिया ३१, नैसृष्टिकीक्रिया ३२, स्वहस्तिकीक्रिया ३३, आज्ञापनिकीक्रिया ३४, विदारिणिकाक्रिया ३५, अनाभोगिकीक्रिया ३६, अनवकाक्षाप्रत्ययिकीक्रिया ३७, प्रायोगिकीक्रिया ३८, सामुदानिकीक्रिया ३९, प्रेमप्रत्ययिकीक्रिया ४०, द्वेषप्रत्ययिकीक्रिया ४१, ईर्यापथिकीक्रिया ४२

६ सवरतत्त्व का सत्तावन भेद—ईर्यासमिति १, भाषासमिति २, एषणासमिति ३, आदाननिक्षेपणासमिति ४ पारिष्ठापनिकासमिति ५, मनोगुप्ति ६, वचनगुप्ति ७,

---

१–शरीर, जिह्वा, नाक, नेत्र, कान २–क्रोध, मान, माया, और लोभ, ३–पाच अव्रत, ४–तीन योग, ५–पच्चीस क्रिया, ६–पाच समिति १–तीनगुप्ति

कायगुप्ति ८, क्षुधापरिषह ९, पिपासापरिषह १०, शीत परिषह ११, उष्णपरिषह १२, दंशमशकपरिषह १३, अचेलपरिषह १४, अरतिपरिषह १५, स्त्रीपरिषह १६, चर्यापरिषह १७, नैषिधिकीपरिषह १८, शय्यापरिषह १९, आक्रोशपरिषह २०, वधपरिषह २१, याचनापरिषह २२, अलाभपरिषह २३, रोगपरिषह २४, तृणस्पर्शपरिषह २५, मलपरिषह २६, सत्कारपरिषह २७, प्रज्ञापरिषह २८, अज्ञानपरिषह २९, सम्यग्दर्शन-परिषह ३०, क्षमा ३१, मार्दव ३२, आर्जव ३३, निर्लोभता ३४, तपोधर्म ३५, सयम ३६, सत्य ३७, शौचधर्म ३८, अकिंचन ३९, ब्रह्मचर्य ४०, अनित्यभावना ४१, अशरणभावना ४२, ससारभावना ४३, एकत्वभावना ४४, अन्यत्वभावना ४५, अशुचित्वभावना ४६, आश्रवभावना ४७, सवरभावना ४८, निर्जराभावना ४९, लोकस्वभावभावना ५०, बोधि-दुर्लभभावना ५१, धर्मभावना ५२, सामायिक ५३, छेदो पस्थापनीय ५४, परिहारविशुद्धि ५५, सूक्ष्मसपराय ५६, यथाख्यात ५७

७ बधतत्त्व के चार भेद—प्रकृतिबध १, स्थितिबध २, अनुभागबध ३, प्रदेशबध ४

१—जिस प्रकार औषधी-निष्पन्न मोदक का स्वभाव वात, पित्त, कफ आदि रोगो का नाश करने का होता है उसी

१—बाइसपरिषह, २—दशयतिधर्म, ३—बारह भावना, ४—पाच चारित्र

प्रकार ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का स्वभाव भी भिन्न भिन्न गुणों का नाश करने का है। ज्ञानावरणीय कर्म आँखों के पाटा के समान है। आँखों के पाटा बाँधने से मनुष्य देख नहीं सकता इसी तरह आत्मा के ऊपर ज्ञानावरणीकर्म रूप पाटा लगने से प्राणी मात्र वस्तुधर्म का जानपना प्राप्त नहीं कर सकते १, दर्शनावरणीय कर्म छड़ीदार के समान है। छड़ीदार (पहरादार) की प्रसन्नता बिना राजा का दर्शन होना कठिन है, इसी तरह दर्शनावरणीय कर्म के दूर हुए बिना प्राणियों को आत्मा का वास्तविक ज्ञान नहीं हो सकता २, वेदनीय कर्म मधुलिप्त-खड्ग के समान है। मधु के चाटने से मधुर स्वाद अवश्य आता है परंतु उसको चाटने पर जीभ के कट जाने से दुःख होता है। इसी तरह वेदनीय योग्य कार्यों को करते हुए आनंद होता है, परन्तु उसका विपाकोदय होने पर दुःखानुभव किये बिना छुटकारा नहीं हो सकता ३, मोहनीय-कर्म मदिरापान के समान है। मदिरापान करने वाला मनुष्य बेभान हो जाता है उसे सद् असद् का पता नहीं लगता और वह माता को स्त्री तथा स्त्री को माता कहने लगता है। इसी तरह मोहनीयकर्म के स्वभावोदय से प्राणि स्व-कर्तव्य को भूल कर उन्मार्ग में जाता है और स्वतत्त्व को परतत्त्व तथा परतत्त्व को स्वतत्त्व समझने लगता है ४, अन्तरायकर्म राज-भंडारी के समान है। भंडारी की इच्छा हो तो वह राजा की आज्ञानुसार देवे अथवा याचक को दुःखी करे। इसी तरह अंतरायकर्म के स्वभावोदय से जीव रूप याचक को दान, लाभ

भोग, उपभोग और वीर्य रूप गुण प्राप्त नहीं हो सकते ५, नामकर्म चितारा के समान है। चित्रकार अपनी इच्छा के मुताबिक चित्र (आकृति) बनाता है। इसी तरह नामकर्म के स्वभाव से प्राणि मात्र शारीरिक सुदरता और असुदरता पाते है ६, गोत्रकर्म कुभकार के समान है। कुम्हार किसी घडे को छोटा और किसी को बडा, किसी को सुडोल और किसी को बेडोल बनाता है। इसी तरह गोत्रकर्म के स्वभाव से जीव ऊच नीच गोत्र में उत्पन्न होता है और सुदर या असुदर गिना जाता है ७, आयुष्कर्म बेडी के समान है। पग में बेडी पड जाने पर चोर भग नहीं सकता, इसी तरह आयुष्कर्म के स्वभाव से जीव उसकी अवधि तक चार गतियों के अदर रहता है। बस इसीका नाम 'प्रकृतिबध' है।

२--जिस प्रकार औषधि-निष्पन्न मोदको में रस की तरतमता से कोई पन्द्रह दिन, कोई महीना, कोई दो महीना, कोई तीन महीना और कोई इससे भी अधिक काल परिमाण वाला होता है। इसी प्रकार कर्मो की भी अवधि न्यूनाधिक परिमाण वाली होती है-ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, अन्तराय, इन चार कर्मों की उत्कृष्ट अवधि (स्थिति) तीस तीस कोडाकोडी, मोहनीयकर्म की सित्तर कोडाकोडी, नामकर्म तथा गोत्रकर्म की बीस बीस कोडाकोडी और आयुष्कर्म की तेंतीस कोडाकोडी सागरोपम की होती है। जघन्य से वेदनीयकर्म की बारह मुहूर्त, नामकर्म, गोत्रकर्म की आठ, आठ

प्रकार ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का स्वभाव भी भिन्न भिन्न गुणों का नाश करने का है। ज्ञानावरणीय कर्म आँखों के पाटा के समान है। आँखों के पाटा बांधने से मनुष्य देख नहीं सकता, इसी तरह आत्मा के उपर ज्ञानावरणीकर्म रूप पाटा लगने से प्राणी मात्र वस्तुधर्म का जानपना प्राप्त नहीं कर सकते १, दर्शनावरणीय कर्म छड़ीदार के समान है। छड़ीदार (पहरादार) की प्रसन्नता विना राजा का दर्शन होना कठिन है, इसी तरह दर्शनावरणीय कर्म के दूर हुए विना प्राणियों को आत्मा का वास्तविक ज्ञान नहीं हो सकता २, वेदनीय कर्म मधुलिप्त-खड्ग के समान है। मधु के चाटने से मधुर स्वाद अवश्य आता है परतु उसको चाटने पर जीभ के कट जाने से दुःख होता है। इसी तरह वेदनीय योग्य कार्यों को करते हुए आनद होता है, परन्तु उसका विपाकोदय होने पर दुःखानुभव किये विना छुटकारा नहीं हो सकता ३, मोहनीय-कर्म मदिरापान के समान है। मदिरापान करने वाला मनुष्य बेभान हो जाता है उसे सद् असद् का पता नहीं लगता और वह माता को स्त्री तथा स्त्री को माता कहने लगता है। इसी तरह मोहनीयकर्म के स्वभावोदय से प्राणि स्व-कर्तव्य को भूल कर उन्मार्ग में जाता है और स्वतत्त्व को परतत्त्व तथा परतत्त्व को स्वतत्त्व समझने लगता है ४, अन्तरायकर्म राज-भंडारी के समान है। भंडारी की इच्छा हो तो वह राजा की आज्ञानुसार देवे अथवा याचक को दुःखी करे। इसी तरह अंतराय-कर्म के स्वभावोदय से जीव रूप याचक को दान, लाभ

भोग, उपभोग और वीर्य रूप गुण प्राप्त नहीं हो सकते ५, नामकर्म चितारा के समान है। चित्रकार अपनी इच्छा के मुताबिक चित्र (आकृति) बनाता है। इसी तरह नामकर्म के स्वभाव से प्राणि मात्र शारीरिक सुंदरता और असुंदरता पाते है ६, गोत्रकर्म कुंभकार के समान है। कुम्हार किसी घडे को छोटा और किसी को बडा, किसी को सुडोल और किसी को बेडोल बनाता है। इसी तरह गोत्रकर्म के स्वभाव से जीव ऊंच नीच गोत्र में उत्पन्न होता है और सुंदर या असुंदर गिना जाता है ७, आयुष्कर्म बेड़ी के समान है। पग में बेडी पड जाने पर चोर भग नहीं सकता, इसी तरह आयुष्कर्म के स्वभाव से जीव उसकी अवधि तक चार गतियों के अंदर रहता है। बस इसीका नाम '**प्रकृतिबंध**' है।

२-जिस प्रकार औषधि-निष्पन्न मोदकों में रस की तरतमता से कोई पन्द्रह दिन, कोई महीना, कोई दो महीना, कोई तीन महीना और कोई इससे भी अधिक काल परिमाण वाला होता है। इसी प्रकार कर्मों की भी अवधि न्यूनाधिक परिमाण वाली होती है-ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, अन्तराय, इन चार कर्मों की उत्कृष्ट अवधि (स्थिति) तीस तीस कोडाकोडी, मोहनीयकर्म की सित्तर कोडाकोडी, नाम-कर्म तथा गोत्रकर्म की बीस बीस कोडाकोडी और आयुष्कर्म की तेंतीस कोडाकोडी सागरोपम की होती है। जघन्य से वेदनीयकर्म की बारह मुहूर्त, नामकर्म, गोत्रकर्म की आठ, आठ

मुहूर्त्त और शेष पाच कर्मों की अन्तर्मुहूर्त्त की होती है। इसीको 'स्थितिबध' कहते है।

३–जिस प्रकार औषधि–निष्पन्न मोदको में कोई मीठा कोई कडुआ, कोई कसायला होता है और उसमें भी कोई एक तार, कोई दो तार, कोई तीन तार आदि की चासनी वाला होता है। इसी प्रकार कोई शुभ, तीव्र, मन्द परिणाम वाला और कोई तीव्रतर, तीव्रतम, मन्दतर, मन्दतम परिणाम वाला होता है। अशुभकर्म का रस सेलडी के समान मीठा होता है। उसमें भी ज्ञानावरणीय ५, दर्शनावरणीय ३, अन्तराय ५, सज्वलनकषाय ४, पुरुषवेद १ एव सत्रह प्रकृतियों का एकठाणिया, द्विठाणिया, त्रिठाणिया, और चौठाणिया रस बध होता है और शेष सर्व शुभ अशुभ प्रकृतियों का द्विठाणिया, त्रिठाणिया, चौठाणिया रस बध होता है, इसीको 'अनुभाग बध' कहते है।

४–जिस प्रकार औषधि–निष्पन्न मोदको म कोई अल्प दल का और कोई अधिक दल का होता है। इसी प्रकार औदारिक १, वैक्रिय २, आहारक ३, तैजस ४, भाषा ५, सासोच्छ्वास ६, मन ७, और कार्मण ८, ये आठ जाति की कर्म–वर्गणा में न्यूनाधिक प्रदेशवाली होती है। समान प्रादेशिक स्कन्ध अनत एकत्रित होते है तब एक वर्गणा होती है। इस प्रकार सर्व जाति की अनती कर्मवर्गणाओं को जीव समय समय म ग्रहण करते है। इनमें प्रथम की चार वर्गणा आठ

स्पर्श वाली है और अन्तिम चार वर्गणा चार स्पर्शवाली है। यही 'प्रदेश-बंध' कहाता है।

८ निर्जरातत्त्व के बारह भेद—अनशनतप १, ऊनोदरिकातप २, वृत्तिसंक्षेप ३, रसत्याग ४, कायक्लेश ५, संलीनता ६, प्रायश्चित्त ७, विनय ८, वैयावृत्य ९, स्वाध्याय १०, ध्यान ११, कायोत्सर्ग १२.

९ मोक्षतत्त्व को समझने के लिये नौ द्वार—सत्पदप्ररूपणा १, द्रव्यप्रमाण २, क्षेत्र ३, स्पर्शना ४, काल ५, अन्तर ६, भाग ७, भाव ८, अल्पबहुत्व ९.

१—मोक्ष, सत् याने विद्यमान है क्योंकि उसका वाचक एक पद है, वह आकाशकुसुम के समान अविद्यमान नहीं है।

१—आलोचना, प्रतिक्रमण, मिश्र, विवेक, कायोत्सर्ग, तप, छेद, मूल, अनवस्थाप्य, पाराचित ये दश प्रकार का है। २—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, मनोयोगविनय, वचनविनय, कायविनय, लोकोपचारविनय ये सात हैं। ३—आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी, ग्लान, नवदीक्षित, स्वधर्मी, कुल, गण, संघ इन दश की सेवा। ४—वाचना, पृच्छना, परिवर्त्तना, अनुप्रेक्षा, धर्मकथा ये पांच भेद हैं। ५—आर्त्त, रौद्र, धर्म, शुक्ल ये चार भेद हैं। ६—गणोत्सर्ग, देहोत्सर्ग, उपध्युत्सर्ग, अशुद्ध-भक्तपानोत्सर्ग, द्रव्योत्सर्ग, भावोत्सर्ग ये पांच भेद हैं। ये छः आभ्यन्तर तप कहलाते हैं, और अनशनादिक छः बाह्य तप कहलाते हैं। बारह प्रकार का तप कर्म निर्जरा का कारण है इससे निर्जरा के भेदों में गिना गया है।

मनुष्यगति १, पचेन्द्रिय २, त्रसकाय ३, भवसिद्धिक (भव्य) ४, सञ्ज्ञी ५, यथाख्यात ६, क्षायिक ७, अनाहार ८, केवलदर्शन ९, केवलज्ञान १०, इन दश मार्गणाओं के द्वारा मोक्ष होता है, शेष मार्गणाओं के द्वारा नहीं।

२—द्रव्यप्रमाण की विचारणा से सिद्धों के जीवद्रव्य अनन्त हैं।

३—क्षेत्र-द्वार के विचार से लोकाकाश के असंख्यातवें भाग में एक सिद्ध रहता है, उसी तरह सब सिद्ध, लोकाकाश के असंख्यातवें भाग में रहते हैं। परन्तु एक सिद्ध से व्याप्त क्षेत्र की अपेक्षा, सब सिद्धों से व्याप्त क्षेत्र का परिमाण अधिक है।

४—क्षेत्र से सिद्धजीवों की स्पर्शना अधिक है क्योंकि जीव, कर्म से मुक्त हो कर जिस आकाशक्षेत्र में रहते हैं, उसका प्रमाण पैंतालीस लाख जोजन लंबा चौड़ा है। उस क्षेत्र में विद्यमान सिद्धों के नीचे, ऊपर और चारों तरफ आकाश प्रदेश लगे हुए हैं।

५—एक सिद्ध की अपेक्षा से काल, सादि-अनन्त है, जिस समय जीव मोक्ष गया, वह काल उस जीव के मोक्ष का आदि है। फिर उस जीव का मोक्ष-स्थान से पतन नहीं होता इसलिये अनन्त है। सब सिद्धों की अपेक्षा से विचारा जाय तो मोक्षकाल, अनादि अनन्त है। क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता कि, अमुक जीव सब से पहले मुक्त हुआ अर्थात् उससे पहले कोई जीव मुक्त नहीं था ऐसा कहना अशक्य है।

६–सिद्धजीव, मोक्षगति को छोड़ कर दूसरी गति में नहीं जाते, इसलिये मोक्ष में अन्तर नहीं है। अथवा सिद्धों में परस्पर क्षेत्रकृत अन्तर नहीं है, क्योंकि जहाँ एक सिद्ध है, वहीं अनन्त सिद्ध हैं। कालकृत और क्षेत्रकृत, दोनों अन्तर सिद्धों में नहीं है।

७–भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान इन तीनों काल में यदि कोई भगवान् से सिद्धों के विषय में पूछे तो यही उत्तर मिलेगा कि–असख्यात निगोद हैं, प्रत्येक निगोद में अनन्त जीव हैं। उनमें से एक निगोद का अनन्तवा भाग मोक्ष गया, इसे भागद्वार कहते हैं।

८–सिद्धों के दो भाव होते हैं–क्षायिकभाव और पारिणामिकभाव। क्षायिकभावे केवलज्ञान और केवलदर्शन तथा पारिणामिकभावे जीवत्व होता है।

९–नपुंसक–सिद्ध कम है, उनसे स्त्री–सिद्ध, सख्यात गुण अधिक हैं। स्त्री–सिद्ध से पुरुष–सिद्ध, संख्यातगुण अधिक है। नपुसक एक समय में उत्कृष्ट दस तक मोक्ष जाते हैं। स्त्रियाँ एक समय में उत्कृष्ट बीस तक मोक्ष जाती है और पुरुष एक समय में उत्कृष्ट एकसो आठ तक मोक्ष जाते हैं।

२६ भवनपति देवों के भेद—

असुरकुमार १, नागकुमार २, सुवर्णकुमार ३, विद्युत्कु-

१–नपुसक दो तरह के होते हैं–जन्मसिद्ध और कृत्रिम। जन्मसिद्ध–नपुसकों को मोक्ष नहीं होता, कृत्रिम को होता है।

मार ४, अग्निकुमार ५, द्वीपकुमार ६, उदधिकुमार ७, दिशि कुमार ८, वायुकुमार ९, स्तनितकुमार १०, इनके पर्याप्ता और अपर्याप्ता मिलकर बीस भेद हुए

२७ व्यन्तर और वाणव्यन्तर के भेद—

व्यन्तर–पिशाच १, भूत २, यक्ष ३, राक्षस ४, किन्नर ५ किंपुरिस ६, महोरग ७, गान्धर्व ८, और वाणव्यन्तर–अणपन्नी १, पणपन्नी २, इसिवाइ ३, भूतवाई ४, कन्दी ५, महाकन्दी ६, कोहंड ७, पतग ८, इनके पर्याप्ता और अपर्याप्ता मिल कर बत्तीस भेद हुए

२८ परमाधामी देवों के भेद—

अम्ब १, अम्बरिसी २, श्याम ३, सबल ४, रुद्र ५, उपरुद्र ६, काल ७, महाकाल ८, असिपत्र ९, धनुष्य १०, कुम्भी ११, वेलु १२, वैतरणी १३, खरस्वर १४, महाघोष १५, इनके पर्याप्ता और अपर्याप्ता मिलकर तीस भेद हुए।

२९ तिर्यग्जृम्भक देवों के भेद—

अन्नजृम्भक १, पानजृम्भक २, वस्त्रजृम्भक ३, लयनजृम्भक ४ शयनजृम्भक ५, पुष्पजृम्भक ६, फलजृम्भक ७, पुष्पफलजृम्भक ८, विद्याजृम्भक ९, अवियत्तजृम्भक १०, इनके पर्याप्ता और अपर्याप्ता मिलके बीस भेद हुए।

३० ज्योतिष्क देवों के भेद—

चन्द्र १, सूर्य २, ग्रह ३, नक्षत्र ४, तारा ५, ये पांच अढ़ाईद्वीप के अन्दर फिरनेवाले और इन्हीं नामके पांच स्थिर

ज्योतिष्क ढाई द्वीप के बाहर है। इन दशों के पर्याप्ता और अपर्याप्ता मिल कर बीस भेद हुए।

३१ बारह देवलोकों के नाम—

सौधर्म १, ईशान २, माहेन्द्र ३, सनत्कुमार ४, ब्रह्म ५, लांतक ६, शुक्र ७, सहस्रार ८, आनत ९, प्राणत १०, आरण ११, अच्युत १२, इनके पर्याप्ता और अपर्याप्ता मिलके चौबीस भेद हुए।

३२ किल्विषी देवों के भेद—

तीन पल्योपमिया १, तीन सागरोपमिया २, तेरह सागरोपमिया ३, इनके पर्याप्ता और अपर्याप्ता मिलके छः भेद हुए।

३३ लोकान्तिक देवों के भेद—

सारस्वत १, आदित्य २, वह्नि ३, वरुण ४, गर्दतोय ५, तुसित ६, अव्याबाध ७, आग्नेय ८, अरिष्ट ९, इनके पर्याप्ता और अपर्याप्ता मिलके अठारह भेद हुए।

३४ ग्रैवेयक देवों के भेद—

सुदर्शन १, सुप्रतिबद्ध २, मनोरम ३, सर्वतोभद्र ४, विशाल ५, सौम्य ६, सुमनस ७, प्रीतिकर ८, आदित्य ९, इनके पर्याप्ता और अपर्याप्ता मिलके अठारह भेद हुए।

३५ अनुत्तर देवों के भेद—

विजय १, विजयंत २, जयंत ३, अपराजित ४, सर्वार्थसिद्ध ५, इनके पर्याप्ता और अपर्याप्ता मिल के दश भेद हुए।

३६ कर्मभूमिज मनुष्यों के भेद—

पाच भरत, पांच ऐरवत, और पाच महाविदेह, इन पन्द्रह के गर्भज पर्याप्ता और अपर्याप्ता ३०, तथा समूर्छिम अपर्याप्ता १५, एवं पैंतालीस भेद हुए।

३७ अकर्मभूमिज के भेद—

पाच हैमवत, पाच एरण्यवत, पाच हरिवर्ष, पाच रम्यक्-वर्ष, पांच देवकुरु और पाच उत्तरकुरु। इन तीस के गर्भज पर्याप्ता और अपर्याप्ता ६०, तथा समूर्छिम अपर्याप्ता ३० एवं नव्वे भेद हुए।

३८ अन्तर्द्वीपज के भेद—

एकोरुक १, हयकर्ण २, आदर्शमुख ३, अश्वमुख ४, अश्वकर्ण ५, उल्कामुख ६, समन्त ७, आभाषिक ८, गजकर्ण ९ मेन्द्रमुख १०, हस्तिमुख ११, हरिकर्ण १२, मेत्रमुख १३, लष्टदन्त १४, वैषाणिक १५, गोकर्ण १६, अयोमुख १७, सिंहमुख १८, हस्तिकर्ण १९, विद्युन्मुख २०, गूढदन्त २१, नगोलिक २२, शष्कुलीकर्ण २३, गोमुख २४, व्याघ्रमुख २५, कर्णप्रावरण २६, विद्युद्दन्त २७, शुद्धदन्त २८,

१—जम्बूद्वीप में एक भरत, धातकीखण्ड में दो भरत, और पुष्करार्द्ध में दो भरत है। इसी क्रम से एरवत और महाविदेह भी जानना। २—जम्बूद्वीप में एक हैमवत, धातकीखण्ड में दो हैमवत और पुष्करार्द्ध में दो हैमवत हैं। इसी क्रम से एरण्यवत आदि क्षेत्र भी समझ लेना चाहिए।

ये अट्ठाइस द्वीप चुल्ल–हिमवत पर्वत की गजदन्ताकार दाढाओं पर और इन्हीं नाम के अट्ठाइस द्वीप शीखरिणी पर्वत की दाढाओं पर स्थित हैं। दोनों मिलकर ५६ होते हैं. इन छप्पन के गर्भज पर्याप्ता ओर अपर्याप्ता ११२, तथा समूर्छिम अपर्याप्ता ५६, एवं एकसौ अडसठ भेद हुए।

३८ तिर्यचों के भेद—

पृथ्वीकाय–सूक्ष्म १, बादर २, अप्काय–सूक्ष्म ३, बादर ४, तेजस्काय–सूक्ष्म ५, बादर ६, वायुकाय–सूक्ष्म ७, बादर ८, साधारण वनस्पति–सूक्ष्म ९, बादर १०, प्रत्येक वनस्पति बादर ११ इन ग्यारह के पर्याप्ता और अपर्याप्ता मिल के बावीस भेद हुए।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, ओर चतुरिन्द्रिय. इन तीनों के पर्याप्ता ओर अपर्याप्ता मिल के छः भेद हुए।

जलचर–गर्भज १, समूर्छिम २, स्थलचर–गर्भज ३ समूर्छिम ४, खेचर–गर्भज ५, समूर्छिम ६, उर परिसर्प–गर्भज ७, समूर्छिम ८, भुजपरिसर्प–गर्भज ९, समूर्छिम १० इन दश के पर्याप्ता ओर अपर्याप्ता मिल के बीस भेद हुए। इस प्रकार तिर्यचों के कुल भेद ऊपर प्रमाणे अडतालीस होते हैं।

४० नारकों के भेद—

घमा (रत्नप्रभा) १, वशा (शर्करप्रभा) २, शैला (वालुकप्रभा) ३, अजना (पकप्रभा) ४, रिट्ठा (धूमप्रभा) ५, मघा (तमःप्रभा) ६, माघवती (तमस्तमःप्रभा) ७ इन सातों के पर्याप्ता ओर अपर्याप्ता मिल के चौदह भेद हुए।

४१ जीवों के पाचसौ त्रेसठ भेद—

देवों के १९८, मनुष्यों के ३०३, तिर्यंचों के ४८, और नारकों के १४ एव जीवों के पाच सो त्रिसठ भेद है। इनके जुदे जुदे भेद समझने के लिये नम्बर २६ से ४० तक देखो।

४२ पाच इन्द्रियों के तइस विषय—

स्पर्शेन्द्रिय के—भारी १, हलका २, कोमल ३, खरदरा ४, गर्म ५, ठंडा ६, चिकना ७, लूखा ८ रसनेन्द्रिय के—तीखा १, कडुवा २, खाटा ३, कसायला ४, मधुर ५ घ्राणेन्द्रिय के—सुगध १, दुर्गंध २ चक्षुरिन्द्रिय के—काला १, नीला २, लाल ३, पीला ४, सपेद ५ श्रोत्रेन्द्रिय के—जीवशब्द १, अजीवशब्द २, मिश्रशब्द ३, ये सब मिल के तेइस विषय हुए।

४३ कामगुण पाच—

शब्द १, रूप २, रस ३, गध ४, और स्पर्श ५

४४ सज्ञा सोलह—

आहार १, भय २, मैथुन ३, परिग्रह ४, क्रोध ५, मान ६, माया ७, लोभ ८, सुख ९, दु'ख १०, मोह ११, वीतराग १२, शोक १३, धर्म १४, ओघ १५, लोक १६ ये सोलह सज्ञा है।

---

१ हाड, २ केश, ३ तालु, ४ पगतली, ५ काच, ६ कान की लौर, ७ नेत्र, ८ जीभ, ९ स्त्री, पुरुष, पक्षी, जानवर आदि का, १० मृदग, ढोल आदि का, ११ वेंड, बसुरी, अलगोजा आदि का

४५ अन्यमत के पुराण—

ब्रह्मपुराण १, पद्मपुराण २, वैष्णवमहापुराण ३, शैव-पुराण ४, श्रीमद्-भागवत ५, मार्कंडेयपुराण ६, आग्नेयपुराण ७, भविष्यपुराण ८, ब्रह्मवैवर्त्तपुराण ९, लिंगपुराण १०, स्कन्दपुराण ११, वामनपुराण १२, कूर्मपुराण १३, गरुड-पुराण १४, ब्रह्माडपुराण १५, नारदपुराण १६, मत्स्यपुराण १७, वाराहपुराण १८

४६ अठारह स्मृति के नाम—

अत्रि १, विष्णु २, हारित ३, अंगिरा ४, यम ५, कात्यायन ६, बृहस्पति ७, पाराशर ८, व्यास ९, दक्ष १०, गौतम ११, वशिष्ठ १२, शंख १३, आपस्तंब १४, सवर्त्त १५, शातातप १६, लिखित १७, बृहत्पाराशर १८. ये अठार स्मृतियाँ अन्य मजहब की जानना चाहिए।

४७ वीरप्रभु के दश श्रावक—

आनन्द १, कामदेव २, चुलणीपिता ३, शूरदेव ४, चूलशतक ५, कुंडकोलिक ६, सद्दालपुत्र ७, महाशतक ८, नंदनीपिया ९, लातकीप्रिय १० इन दस श्रावकों का अधि-कार उपासकदशांगसूत्र में है।

४८ बारह चक्रवर्त्ती के नाम—

भरत १, सगर २, मघवा ३, सनत्कुमार ४, शांति ५, कुन्थु ६, अर ७, सुभूम ८, पद्म ९, हरिषेण १०, जय ११, और ब्रह्मदत्त १२.

४९ वासुदेव के नाम—

त्रिपृष्ट १, द्विपृष्ट २, स्वयंभू ३, पुरुषोत्तम ४, पुरुषसिंह ५, पुंडरीकपुरुष ६, दत्त ७, नारायण ८, और श्रीकृष्ण ९

५० बलदेव के नाम—

अचल १, विजय २, भद्र ३, सुप्रभ ४, सुदर्शन ५, आनंद ६, नंदन ७, पद्म ८, और रामचन्द्र ९.

५१ प्रतिवासुदेव के नाम—

अश्वग्रीव १, तारक २, मेरक ३, मधुकैटभ ४, निसुंभ ५, बली ६, प्रह्लाद ७, रावण ८, और जरासन्ध ९

१२ चौदह रत्न के नाम—

पंचेन्द्रिय—सेनापति १, गाथापति २, पुरोहित ३, हस्ती ४, अश्व ५, वार्द्धिक ६, स्त्री ७, एकेन्द्रिय—चक्र ८, छत्र ९, चर्म १०, मणि ११, कागणी १२, खड्ग १३, दंड १४, इन रत्नों के हजार हजार देवता अधिष्ठायक हैं और ये चक्रवर्त्ती के ही होते हैं। इनका प्रमाण वगैरह प्रवचन-सारोद्धार ग्रन्थ में है।

५३ वासुदेव के सात रत्न—

चक्र १, खड्ग २, धनुष ३, पुष्पमाला ४, मणि ५, गदा ६, शंख ७, ये भी देवाधिष्ठित होते हैं।

५४ नौ निधान के नाम—

नैसर्पी १, पाडुक २, पिंगल ३, सर्वरत्न ४, महापद्म

१ आठ योजन ऊंचे, नौ योजन पहोले और बारह योजन

५, काल ६, महाकाल ७, माणवक ८, महानिधि ९, इनका विशेष वर्णन प्रवचनसारोद्धार से जानना।

५५ साधु के पाच महाव्रत—

प्राणातिपात १, मृषावाद २, अदत्तादान ३, मैथुन ४, परिग्रह ५ इसके अलावा छठ्ठा रात्रिभोजनविरमण व्रत भी है। प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के समय मे पाचो महाव्रत, तथा मध्य तीर्थंकरो के समय मे शुरू के चार ही महाव्रत होते हैं। क्यों कि वे मैथुन के साथ परिग्रह का समावेश कर लेते हैं।

५६, श्रावकों के बारह व्रत—

स्थूलप्राणातिपातत्याग १, स्थूलमृषावादत्याग २, स्थूल-अदत्तादानत्याग ३, स्वदारासन्तोष ४, परिग्रहप्रमाण ५, दिग् परिमाण ६, भोगोपभोगप्रमाण ७, अनर्थदंडत्याग ८, सामायिकव्रत ९, देशावगासिकव्रत १०, पौषधोपवासव्रत ११, और अतिथिसंविभाग १२।

५७ पाच आश्रव—

मिथ्यात्व १, अविरति २, प्रमाद ३, कषाय ४, योग ५।

५८ पाच प्रमाद—

मदिरा १, विषय २, कषाय ३, निंदा ४, विकथा ५।

५९ पाच अभिगम—

सचित्तद्रव्य त्याग १, अचित्तद्रव्यरखना २, एक साड़ी

सन्न पटी क आकार के होते हैं और इनकी उत्पत्ति गगानदी के मुख [कीनारे] पर होती है।

उत्तरासग करना ३, भगवान् को देख कर हाथ जाड के मस्तक पर चढाना ४, मन स्थिर रखना ५, ये पाच अभिगम जिन-मदिर या गुरु अवग्रह मे साँचवना चाहिए।

६० जीव के निकलने के स्थान—

पग से १, जघा से २, पेट से ३, मस्तक से ४, सर्वाग से ५ ये पाच स्थान, जीव के निकलने के है, ऐसा स्थानागजी सूत्र में कहा है। पैर से निकला जीव नरक म, जघा से निकला तिर्यंच में, पेट से निकला मनुष्य मे, मस्तक से निकला देवता मे और सर्वांग से निकला मोक्ष में जाता है।

६१ यात्रा मे छ रीतार—

समकितधारी १, ब्रह्मचारी २, एकाहारी ३, सचित्त-परिहारी ४, भूमिसथारी ५, और पादचारी ६

६२ छ दर्शन के नाम—

जैन १, बौद्ध २, चार्वाक ३, जैमिनीय ४, साख्य ५, और नैयायिक ६

६३ सात क्षेत्र के नाम—

जिनभुवन १, जिनबिम्ब २, पुस्तकलेखन ३, साधु ४, साध्वी ५, श्रावक ६, और श्राविका ७

६४ सात अभव्य—

सगमदेव १, कालकसूरकसाई २, पालक (कृष्णपुत्र) ३, पालक (खधकादि पीलक) ४, अगमर्दकाचार्य ५, कपि और लादासी ६, और उदाइनृपमारक-साधु ७.

६५ अष्टमांगलिक—

स्वस्तिक १ आदर्श २, कलश ३, भद्रासन ४, श्रीवत्स ५, मत्स्ययुग्म ६, वर्द्धमान ७, नद्यावर्त्त ८, ये आठ मांगलिक शुद्ध चावलों से पूजा या दर्शन के अनन्तर मांड कर भाव पूजा करना चाहिए ।

६६ पैंतालीस आगमों के नाम—

नं०	ग्यारह अंग के नाम—	श्लोक
१	आचाराङ्गसूत्र	२५२५
२	सूत्रकृताङ्गसूत्र	२१००
३	स्थानाङ्गसूत्र	३६००
४	समवायाङ्गसूत्र	१६६७
५	भगवतिसूत्र	१५७५२
६	ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र	५४००
७	उपासकदशाङ्गसूत्र	८१२
८	अन्तकृदशाङ्गसूत्र	८९९
९	अनुत्तरोपपातिकसूत्र	१९२
१०	प्रश्नव्याकरणसूत्र	१२५६
११	विपाकश्रुताङ्गसूत्र	१२१६
	बारह उपांग के नाम—	
१	औपपातिकोपाङ्गसूत्र	११६७
२	राजप्रश्नीयोपाङ्गसूत्र	२१२०
३	जीवाभिगमोपाङ्गसूत्र	४७००
४	प्रज्ञापनोपाङ्गसूत्र	७७८७

५ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्र		४४५४
६ चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्र		२२००
७ सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्र		२२६६
८ कल्पिकासूत्र		
९ कल्पवर्डिसिकासूत्र		
१० पुष्पिकासूत्र	निरयावलिकासूत्र	११०९
११ पुष्पचूलिकासूत्र		
१२ वह्निदशासूत्र		

छ छेद के नाम—

१ दशाश्रुतस्कन्धसूत्र	१८३०
२ बृहत्कल्पसूत्र	४७३
३ व्यवहारसूत्र	३७३
४ निशीथसूत्र	८११
५ जीतकल्पसूत्र	१३०
६ पचकल्पसूत्र	११३३

चार मूल सूत्र के नाम—

१ आवश्यकसूत्र	१३०
२ दशवैकालिकसूत्र	७००
३ उत्तराध्ययनसूत्र	२०००
४ पिंडनिर्युक्तिसूत्र	८३५

दशपयन्ना के नाम—

१ चउसरणपयन्ना	८०
२ आउरपचक्खाण	१००

३ भत्त-पयन्ना	२१५
४ सथार-पयन्ना	१५५
५ मरणविहि-पयन्ना	८३७
६ देविंदत्थय-पयन्ना	३७५
७ तदुलवयाली-पयन्ना	५००
८ चदाविज्ज-पयन्ना	२००
९ गणिविज्ज-पयन्ना	१०५
१० जोइसकरड-पयन्ना	१८५०
१ नन्दीसूत्र	७००
२ अनुयोगद्वारसूत्र	१८९९

६७ वैराग्य पाच—

मचक वैराग्य १, श्मशान वैराग्य २, मर्कट वैराग्य ३, मिथुन वैराग्य ४, परम (ज्ञान) वैराग्य ५

६८ भय सात—

इहलोक १, परलोक २, आदान ३, मरणभय ४, अकस्मात् ५, वेदना ६, और अकीर्त्ति ७

६९ मद आठ—

जातिमद १, कुलमद २, बलमद ३, रूपमद ४, तपमद ५, ऐश्वर्यमद ६, श्रुतमद ७, और लाभमद ८

७० बारह बातें दुर्लभ—

मनुष्य अवतार १, आर्यदेश २, उत्तमकुल ३, आरोग्यता ४, पूर्ण आयुष्य ५, पाचों इन्द्रियों की पटुता ६, हित अहित

को जानने की बुद्धि ७, धर्मश्रवण ८, शुद्धधर्म की श्रद्धा ६, उत्तमजाति १०, सम्यक्त्व प्राप्ति ११, सयम-प्राप्ति १२.

१७ सत्रह प्रकार का सयम—

पृथ्वीकाय-सयम १, अप्कायसयम २, तेजस्काय-सयम ३, वायुकाय-सयम ४, वनस्पतिकाय-सयम ५, द्वीन्द्रिय-सयम ६, त्रीन्द्रिय-सयम ७, चतुरिन्द्रिय-सयम ८, पचेन्द्रिय-सयम ६, अजीव-सयम १०, प्रेक्षा-सयम ११, उपेक्षा-सयम १२, प्रमार्जना-सयम १३, पारिस्थापनिका-सयम १४, मनःसयम १५, वचन-सयम १६, काय सयम १७

७२ नौ ब्रह्मचर्यगुप्ति—

स्त्री का निवासवाली जगह में न रहना १, स्त्री-कथा न करना २, स्त्री के आसन पर न बैठना ३, स्त्रियों के अगोपाग नहीं देखना ४, एक भींत के अन्तर में स्त्री-पुरुष रहते हों वहाँ न रहना ५, पूर्वावस्था में की हुई क्रीडाओं को याद न करना ६, कामोद्दीपक सरस आहार न करना ७, अति आहार न करना ८, शरीर की शोभा न करना ६

७३ श्रावक की ग्यारह पडिमा—

एक महिना तक निरतिचार सम्यक्त्व पालन और त्रिकाल देव पूजन करना १, दो महिना तक निरतिचार बारह व्रत पालन करना २, तीन महिना तक सम्यक्त्वमूलक बारह व्रत सहित निरतिचार सामायिक करना ३, चार महिना तक पूर्व क्रिया सहित चार पर्वों निरतिचार पोसह करना ४, पांच

महिना तक प्रति प्रहर चोवीस लोगस्स का कायोत्सर्ग करना ५, छः महिना तक निरतिचार ब्रह्मचर्य पालन करना ६, सात महिना तक सचित्त का त्याग करना ७, आठ महिना तक आरंभ समारंभ का त्याग करना ८, नौ महिना तक खुद आरंभ न करना और दूसरों के पास आरंभ न कराना ९, दस महिना तक खुद के वास्ते बना आहार न लेना १०, ग्यारह महिना तक साधु समान क्रिया करना, शिरभद्र रखना, खुद के कुल में गोचरी लेना ११.

७४ साधु की पडिमा—

पहली—एक महिना तक एक दात आहार और एक दात पानी लेना १, दूसरी–दो महिना तक दो दात आहार और दो दात पानी लेना २, तीसरी–तीन महिना तक तीन दात आहार और तीन दात पानी लेना ३, चौथी–चार महिना तक चार दात आहार और चार दात पानी लेना ४, पाचवीं–पाच महिना तक पाच दात आहार और पाच दात पानी लेना ५, छट्ठी–छ महिना तक छः दात आहार और छ दात पानी लेना ६ सातवीं–सात महिना तक सात दात आहार और सात दात पानी लेना और कोइ न जाने ऐसे गुप्त स्थान में रहना ७, आठवीं–सात दिन की ८, नौवीं–सात अहोरात्रि की ९, दशवीं–सात अहोरात्रि की १०, ग्यारहवीं–एक अहोरात्रि की ११, बारहवीं–एक रात्रि की १२।

७५ बीस असमाधि स्थान—

बिना देखे और उतावल से चलना १, बिना पूंजे बैठना २, बिना उपयोग से पूजना ३, हिलती हुई शय्या रखना ४, गुरु के सामे बोलना ५, स्थविर का घात करना ६, जीवहिंसा करना ७, वारवार क्रोध करना ८, अतिक्रोध करना, ९, चुगली खाना १०, पीठ पिछाड़ी अवर्णवाद बोलना ११, नया कलह उत्पन्न करना १२, जूने झगड़े उदीरना १३, सचित्त-रज से भरे हुए पैर हाथों के ईरियावही करना १४, अकाले सज्झाय करना १५, कलहकारी बातें करना १६, रात्रि में ऊंचे शब्द से बोलना १७, गच्छीय-साधुओं को तकलीफ देना १८, सुबह होतेही या लगभग वेला में आहार करना १९, सदोष आहारादि लेना २०

७६ इकीस सबल दोष—

हस्तकर्म करना १, मैथुन सेवना २, रात्रि-भोजन करना ३, आधाकर्मी आहारादि लेना ४, शय्यातर-पिंड लेना ५, उद्देशिकादि दोष दूषित आहार लेना ६, पचक्खाण् भागना ७, छः छः महिना में एक गच्छ से दूसरे गच्छ में

---

१ अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार आदि दोषों से सयम-धर्म को बाधा पहुंचाने वाले दोषों को 'असमाधि-स्थान' कहते हैं।

२—नाना दोषों (अतिचार आदि) से चारित्र को मलिन करनेवाले कार्य 'सबलदोष' कहाते है।

जाना ८, महिना म नाभिममाण जलवाली तीन नदी उपरान्त नदी उतरना ९, महिना में तीन कपटाइ करना १०, राजपिंड खाना ११, बलात्कार से प्राणातिपात करना १२, असत्य बोलना १३, अदत्तादान लेना १४, सचित्त भूमि पर काउस्सग्ग करना १५, भींजे हुए शरीर से या सचित्तरज खरटित शरीर से शहर में आना १६, जीव या जीववाली भूमि पर बैठना १७, सचित्त जमीकन्द खाना १८, एक वर्ष में नाभि प्रमाण जलवाली दश नदी उपरात नदी उतरना १९, एक वर्ष में दश कपटाइ करना २०, सचित्त जल खरटित हाथो से आहार लेना २१

७७ तीस मोहनीय स्थान—

त्रस जीवों को जल में डुबोना १, त्रस जीवो का मुख बंद करना या स्वास रोकना २, जीवो को नाक के मारना ३, जीवो का लकडी आदि से शिर फोडना ४, आचार्य आदि की घात करना ५, खोटे परिणामो के वश सामर्थ्य रहते भी ग्लानसाधु की वैयावच्च नहीं करना ६, तपस्वी को धर्म-भ्रष्ट करना ७, ज्ञान, दर्शन, चारित्र मार्ग का नाश करना ८, केवलज्ञानी की निंदा करना ९, आचार्य की निंदा करना या उनके सामने बोलना १०, आचार्य या विद्यागुरु का कहा न मानना और उनका काम न करना ११, बारबार राजाओ को प्रयाण का मुहूर्त्त बताना १२, वशीकरण करना १३, प्रत्याख्यान ले कर भोगो के लिये प्रार्थना करना १४, मूर्ख रहते भी मैं पंडित हूं ऐसा कहना १५, तपस्वी नहीं हूं

तो भी मैं तपस्वी हूं ऐसा कहना १६, बहुत लोगों को अग्नी में जलाना १७, खुद खोटा करके दूसरों का नाम लेना १८, खोटे परिणाम से साचे को झूठा ठहराना १९, कपट से दूसरों को ठगना २०, वारवार कलह करना २१, विश्वास देकर पर-धन लेना २२, परस्त्री को भगाना २३, राजकुमार नहीं है तौ भी मैं राजकुमार हूं ऐसा कहना २४, ब्रह्मचारी नहीं है, तो भी मैं ब्रह्मचारी हूं ऐसा कथना २५, जिसकी सहायता से सुखी हुआ उसीका धन हरने की इच्छा करना २६, जिसके प्रताप से ठकुराइ मिली उसीको अंतराय देना २७, सेनापति, मत्री, देश का हितचिंतक आदि को मारना २८, देवों को देखता नहीं है तो भी मैं देवों को देखता हू ऐसा कहना २९, अहमेनेति भगवान मैं ही ऐसा कहता हू ऐसा अवज्ञा वचन बोलना ३०.

७८ गुरु की तेंतीस आशातना—

गुरु के आगे चलना १, आगे बैठना २, आगे खडे रहना ३, गुरु के बराबरी से चलना ४, बराबरी से बैठना ५, बराबरी से खडे रहना ६, गुरु के नजीक चलना ७, नजीक बैठना ८, नजीक खडे रहना ९, स्थंडिल जाकर आये बाद गुरु के पहले पानी पीना १०, बाहर से आये बाद गुरुके पहले ईरियावही करना ११, रात्रि में गुरु के बुलाने पर जागते हुए भी न बोलना १२, बात करने योग्य मनुष्य से गुरु के पहले ही बातें करना १३, गोचरी की आलोयणा गुरु के पास न करके दूसरे साधु के पास करना १४, गुरु के पहले दूसरे साधुओं को

आहार का निमंत्रण करना १५, आहारादि गुरु को न दिखा-कर दूसरे साधु को दिखाना १६, गुरु को पूछे विना दूसरों को आहारादि देना १७, अच्छा अच्छा आहार खुद खा लेना और गुरु को तुच्छ आहार देना १८, गुरु का वचन नहीं सुनना १९, गुरु के सामने ऊचे शब्द से बोलना २० गुरु के बोलाने पर क्या कहते हो ऐसा बोलना २१, गुरु के शिक्षा देने पर तुम हमको कहनेवाले कौन हो, ऐसा कहना २२, ग्लान की वैयावच्च करने वास्ते गुरु आदेश देवे, तब 'तुम्हीं करो मेरे से नहीं होती' ऐसा कहना २३, गुरु की धर्मदेशना में उदास हो के बैठना २४, गुरु कुछ कहें तब 'तुम्हें कुछ याद नहीं' ऐसा बोलना २५, गुरु की धर्म-कथा का भंग करना २६, सभा जुड़ने पर गुरु की आज्ञा विना धर्मोपदेश देना २७, गुरु-सभा को गोचरी की टाइम हो गई है ऐसा कहके उठा देना २८, गुरु के संथारा से पग लगाना २९, गुरु के संथारा ऊपर बैठना ३०, गुरु से ऊचे आसन पर बैठना ३१, बरावर आसन लगा के बैठना ३२, गुरु के पूछने पर आसन के ऊपर बैठे ही उत्तर देना ३३

७९ श्रावक के इक्कीस गुण—

अक्षुद्र—ऊचे स्वभाववाला और स्व-पर उपकार करने वाला १, रूपवान्—जिसे धर्म करते देख, दूसरे अनेक लोगों को धर्म का बोध होना २, प्रकृतिसौम्य—शीतल स्वभाव वाला ३, लोकप्रिय—लोकविरुद्ध कार्य न करनेवाला ४, अक्रूर—क्रोधी नहीं, सुख से धर्म करनेवाला ५, पाप

भीरु—पाप से डरनेवाला ६, अशठ—मूर्ख नहीं, धर्म में दृढ नहीं रखनेवाला ७, दाक्षिण्य—परोपकारी पन से लोगों पर अपना प्रभाव डालनेवाला ८, लज्जालु—अकार्य कर्म करने में लज्जा रखनेवाला ९, दयालु—सब जीवों को आत्मवत् समझनेवाला १०, मध्यस्थ—गुणवानों की सोबत करनेवाला ११, गुणरागी—गुणवानों को देख प्रसन्न होनेवाला १२, सत्कथी—विकथाओं का त्याग करने और धर्म संबंधी कथाओं को कहनेवाला १३, सत्पक्षयुक्त—सदाचारी परिवारवाला और जिसीसे धर्मान्तराय नहीं देने वाला १४, दीर्घदर्शी—खूब सोच विचार के कार्य करनेवाला १५, विशेषज्ञ—सत् असत् के मर्म को विशेषरूप से जाननेवाला १६, वृद्धानुग—उत्तमलोगों का मर्यादा में वरतनेवाला १७, विनीत-गुणयत गीतार्थों का विनय करनेवाला १८, कृतज्ञ—किये गये उपकारों को नहीं भूलनेवाला १९, परहितकारी—दूसरों की आत्मा को दुर्गति से बचानेवाला २०, लब्धलक्ष्य—इंगित आकार मात्र से दूसरों के मानसिक भावों को जानने वाला २१

८ सात नय—

नैगम १, संग्रह २, व्यवहार ३, ऋजुसूत्र ४, शब्द ५, समभिरूढ ६, एवंभूत ७, इनमें प्रथम की चार नय 'द्रव्यार्थिक-व्यवहार' और अन्तिम तीन नय 'पर्यायार्थिक-निश्चय' इस नाम से भी कही जाती हैं।

८१ सप्त-भंगी—

स्यादस्ति १, स्यान्नास्ति २, स्यादस्तिनास्ति ३, अवक्तव्य ४, स्यादस्ति अवक्तव्य ५, स्यान्नास्ति अवक्तव्य ६, स्यादस्तिनास्ति अवक्तव्य ७

८२ चौदह पूर्व मय पदसंख्या—

नं०	नाम–	पदसंख्या–	हाथी–
१	उत्पाद पूर्व	११ क्रोड	१
२	आग्रायणीय पूर्व	९६ लाख	२
३	वीर्यप्रवाद पूर्व	७० लाख	४
४	अस्तिनास्तिप्रवाद	६० लाख	८
५	ज्ञान-प्रवाद पूर्व	३६ क्रोड	१६
६	सत्य-प्रवाद पूर्व	१ क्रोड, ६० लाख	३२
७	आत्म-प्रवाद पूर्व	३६ क्रोड	६४
८	कर्म-प्रवाद पूर्व	१ क्रोड, ८ लाख	१२८
९	प्रत्याख्यानप्रवाद	८४ लाख	२५६
१०	विद्या-प्रवाद पूर्व	११ क्रोड, १५ हजार	५१२
११	अवन्ध्यप्रवाद पूर्व	६२ क्रोड	१०२४
१२	प्राणावायप्रवाद	१ क्रोड ५६ लाख	२०४८
१३	क्रियाविशाल पूर्व	९ क्रोड	४०९६
१४	लोकबिंदुसार पूर्व	१२ क्रोड, ५० लाख	८१९२

८३ दंडक चौवीस—

सात नारक का १, भवनपति का १०, स्थावरजीवों का —

५, विकलेन्द्रिय का ३, पचेन्द्रिय-गर्भजतिर्यंच १, गर्भज-मनुष्य १, व्यतर १, ज्योतिष्क १, वैमानिक १, एव २४.

८४ अट्ठाइस द्वार—

शरीरद्वार १, शरीरमानद्वार २, सघयणद्वार ३, सज्ञाद्वार ४, सस्थानद्वार ५, कषायद्वार ६, लेश्याद्वार ७, इन्द्रियद्वार ८, समुद्घातद्वार ९, दृष्टिद्वार १०, दर्शनद्वार ११, ज्ञानद्वार १२, योगद्वार १३, उपयोगद्वार १४, उपपातद्वार १५, च्यवनद्वार १६, आयुष्यद्वार १७, पर्याप्तिद्वार १८, आहारद्वार १९, सुसज्ञाद्वार २०, गतिद्वार २१, आगतिद्वार २२, वेदद्वार २३, गुणठाणाद्वार २४, अल्पबहुत्वद्वार २५, माणद्वार २६, जीव भेदद्वार २७, सयतादिद्वार २८

८५ चौवीसदडक मे अट्ठाइस द्वार—

१ शरीर—नारक १, भवनपति १०, व्यन्तर १, ज्योतिष्क १, वैमानिक १, इन चौदह दडक में वैक्रिय, तैजस, कार्मण, ये तीन शरीर, गर्भज-मनुष्य में पाच शरीर, गर्भज-तिर्यंच में आहारक विना चार शरीर, पृथ्वी १, अप् २, अग्नी ३, वनस्पति ४ विकलेन्द्रिय ३, इन सात दडक में औदारिक, तैजस, कार्मण, ये तीन और वायु में औदारिक, वैक्रिय, तैजस, कार्मण, ये चार शरीर होते हैं।

२ शरीरमान—नारक में उत्कृष्ट ५०० धनुष, भवन-पति, व्यतर, ज्योतिष्क, वैमानिक इन तरह दडक में ७ हाथ, वनस्पति में उत्कृष्ट १००० जोजन से अधिक, द्वीन्द्रिय का

उत्कृष्ट बारह जोजन, मनुष्य तथा त्रीन्द्रिय का उत्कृष्ट ३ कोश, चतुरिन्द्रिय का उत्कृष्ट १ जोजन, और गर्भज तिर्यंच का उत्कृष्ट १००० जोजन का होता है।

उत्तर वैक्रिय शरीर देवता में लाख जोजन, मनुष्य म लाख जोजन से अधिक, नारक में हजार जोजन और तिर्यंच गर्भज में नवसौ योजन का उत्कृष्ट होता है। तथा पृथ्वी, अप्, तेउ, वाउ, इन चार स्थावर का जघन्योत्कृष्ट शरीरमान और चौवीसों दडकों का जघन्य शरीरमान अगुल के असख्यातवें भाग का होता है।

३ सघयण—गर्भज मनुष्य और तिर्यंच मे छ सघयण, विकलेन्द्रिय में छेवट्टा सघयण है, शेष दडक असघयणी है।

४ सज्ञा—चोवीसो दडक में चारों सज्ञा होती है परन्तु सोलह सज्ञा की अपेक्षा से वीतराग सज्ञा और धर्मसज्ञा इन दो के विना चौदह सज्ञा होती है।

५ **संस्थान**—भवनपति, व्यतर, ज्योतिष्क, वैमानिक, इन तेरह दडक में समचतुरस्र-सस्थान होता है, गर्भजमनुष्य तथा गर्भजतिर्यंच में छ सस्थान होते है। विकलेन्द्रिय, तथा नारक में हुंडकसस्थान, वनस्पति का नाना आकार का, अप्काय का जलपर्पोटाकार का, वायु का पताकाकार का, तेजस्काय का सूची के आकार का और पृथ्वी का मसूर की दाल या अर्द्धचन्द्राकार का सस्थान होता है।

६ कषाय—चौवीसो दडकों में चार अथवा अनतानुवधी आदि सोलह कषाय होते हैं।

७ लेश्या—गर्भज तिर्यच और मनुष्य में छः लेश्या, नारक, तेउ, वायु, विकलेन्द्रिय इन छः दडकों में पहली तीन लेश्या, वैमानिक में तीन लेश्या अन्तिम, पृथ्वी, अप्, वनस्पति, भवनपति, व्यतर, इन पांच दडकों में तेजु, कृष्ण, नील, कापोत, ये चार लेश्या और ज्योतिष्क में तेजु लेश्या होती है।

८ इन्द्रिय—गर्भज तिर्यच, गर्भज मनुष्य, भवनपति, व्यतर, ज्योतिष्क, वैमानिक, नारक, इन सोलह दडकों में पाच इन्द्रियॉ, स्थावर मे एक स्पर्शेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय में स्पर्श, रस ये दो, त्रीन्द्रिय में स्पर्श, रसन, घ्राण ये तीन चतुरिन्द्रिय में स्पर्श, रसन, घ्राण, चक्षु ये चार इन्द्रियाँ होती है।

९ समुद्घात—मनुष्यगर्भज में सात, गर्भज तिर्यच में पहले पाच, भवनपति, व्यतर, ज्योतिष्क, वैमानिक, नारक, वायु, इन पन्द्रह दडक में पहले चार और पृथ्वी, अप्, अग्नी, वनस्पति, विकलेन्द्रिय इन सात दडकों में पहले तीन समुद्घात होते है।[1]

१० दृष्टि—भवनपति, व्यतर, ज्योतिष्क, वैमानिक, गर्भज तिर्यच, गर्भज मनुष्य, नारक इन सोलह दडकों में तीन, स्थावर में मिथ्यादृष्टि एक, विकलेन्द्रिय में सम्यग और मिथ्या ये दो दृष्टि होती हैं।[2]

---

१ वदना, कषाय, मरण, वैक्रिय, तैजस, आहारक, केवल ये सात समुद्घात हैं। २ सम्यग्, मिथ्या, मिश्र ये तीन दृष्टि है।

११ दर्शन—गर्भज मनुष्य में चार, स्थावर, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय इन सात दडक में एक अचक्षु, चतुरिन्द्रिय में चक्षु, अचक्षु ये दो और शेष दडक में पहले तीन दर्शन होते है।

१२ ज्ञान-अज्ञान—मनुष्य में पाच ज्ञान तीन अज्ञान, स्थावर में पहले दो अज्ञान, विकलेन्द्रिय में पहले दो ज्ञान दो अज्ञान और शेष दडक में पहले तीन ज्ञान तथा तीन अज्ञान होते है।

१३ जोग—भवनपति, व्यतर, ज्योतिष्क, वैमानिक, नारक, इन चौदह दडक में ओदारिक १, ओदारिकमिश्र २, आहारक ३, आहारकमिश्र ४, इन चार योग के विना ग्यारह, गर्भज तिर्यच में आहारक, आहारकमिश्र इन दो विना तेरह, मनुष्य में पन्द्रह, विकलेन्द्रिय में औदारिक १, ओदारिकमिश्र २, कार्मणकाययोग ३, असत्यामृषा ४ ये चार, वायु में ओदारिक १, ओदारिकमिश्र २, वैक्रिय ३, वैक्रियमिश्र ४, कार्मणकाय ५, ये पाच, पृथ्वी अप् तेउ वनस्पति इन चार दडक में ओदारिक, ओदारिकमिश्र, कार्मणकाय, ये तीन योग होते है।

१४ उपयोग—मनुष्य में बारह, द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय में ज्ञान २, अज्ञान २, अचक्षुदर्शन १ ये पाच, चतुरिन्द्रिय में ज्ञान २ अज्ञान २, चक्षुदर्शन १ अचक्षुदर्शन १ ये छः, स्थावर में अज्ञान २, अचक्षुदर्शन १, ये तीन ओर शेप दडक

३ समकिती में ज्ञान और मिथ्यात्वी म अज्ञान जानना।

में केवलज्ञान, केवलदर्शन इन दो के विना नव उपयोग होते है।

१५ उपपात—गर्भज मनुष्य में एक समय में सख्याता, वनस्पति में अनन्ता, और शेष दंडकों म सख्याता असख्याता जीव उत्पन्न होते है।

१६ च्यवन—मनुष्य मे एक समय में सख्याता, वनस्पति में अनन्ता और शेष दडकों में सख्याता असख्याता जीव चवते है।

१७ आयुष्य-उत्कृष्ट—

१ पृथ्वी	२२ हजार वर्ष	जघन्यायु पाचो स्थावर का अन्तर्मुहूर्त का होता है।
२ अप्	७ हजार वर्ष	
३ अग्नी	३ दिन	
४ वायु	३ हजार वर्ष	
५ वनस्पति	१० हजार वर्ष	

विकलेन्द्रिय उत्कृष्टायु—

१ द्वीन्द्रिय	१२ वर्ष	जघन्यायु— अतर्मुहूर्त का होता है।
२ त्रीन्द्रिय	४६ दिन	
३ चतुरिन्द्रिय	६ महिना	

गर्भज-तिर्यंच उत्कृष्टायु—

१ जलचर	एक पूर्वक्रोड वर्ष का	जघन्यायु—अन्तर्मुहूर्त्त का है।
२ स्थलचर	तीन पल्योपम का	
३ खेचर	पल्योपमाऽसख्येयभाग का	
४ उरःपरिसर्प	एक पूर्वक्रोड वर्ष का	
५ भुजपरिसर्प	एक पूर्वक्रोड वर्षका	

संमूर्छिम पचेन्द्रिय तिर्यंचायु—

१ जलचर	१ पूर्व क्रोड वर्ष का	जघन्यायु—अन्तर्मुहूर्त्त का जानना.
२ स्थलचर	८४ हजार वर्ष का	
३ खेचर	७२ हजार वर्ष का	
४ उरःपरिसर्प	५३ हजार वर्ष का	
५ भुजपरिसर्प	४२ हजार वर्ष का	

नारक का आयुष्य—

नाम	उत्कृष्टायु—	जघन्यायु—
घमा	१ सागरोपम	१० हजार वर्ष
वंशा	३ सागरोपम	१ सागरोपम
सेला	७ सागरोपम	३ सागरोपम
अजना	१० सागरोपम	७ सागरोपम
रिट्ठा	१७ सागरोपम	१० सागरोपम
मघा	२२ सागरोपम	१७ सागरोपम
माघवई	३३ सागरोपम	२२ सागरोपम

कर्मभूमिज गर्भज-मनुष्य का उत्कृष्ट आयुष्य तीन पल्योपम, अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्य का तीन पल्योपम और अतरद्वीपज गर्भज मनुष्य का पल्योपम के असख्यातवें भाग का तथा सम्मूर्छिम मनुष्य का अन्तर्मुहूर्त का होता है।

भवनपतिदवायु—

दक्षिण दिशि में रहनेवाले असुरकुमार निकायिक देवों का एक सागरोपम, उत्तर दिशि के असुरकुमार निकायिक देवों का कुछ अधिक एक सागरोपम, दक्षिण दिशि के नाग कुमार आदि नव निकाय के देवों का डेढ़ पल्योपम, उत्तर दिशि के नागकुमारादि नव निकाय के देवों का कुछ कम दो पल्योपम और व्यतर देवो का एक पल्योपम का उत्कृष्ट आयुष्य होता है। दशों भवनपति और व्यतर का जघन्यायु दश हजार वर्ष का है।

ज्योतिष्कन्वायु—

चन्द्र और चन्द्र विमानवासी देवों का एक पल्योपम एक लाख वर्ष, सूर्य और सूर्य विमानवासी देवो का एक पल्योपम एक हजार वर्ष, ग्रह और ग्रह विमानवासी देवा का एक पल्योपम, नक्षत्र और नक्षत्र विमानवासी देवों का आधा पल्योपम, तारा और तारा विमानवासी देवों का पाव पल्योपम, उत्कृष्टायु और

१ जहा अधिक और साधिक हो वहा पल्योपम का असख्यातवा भाग पल्योपम या सागरोपम ऊपर अधिक समझना चाहिये।

प्रथम के चार ज्योतिष्क देवों का जघन्यायु पावपल्योपम तथा ताराओं का पल्योपम के आठवें भाग का होता है।

वैमानिकदेवायु—

नं०	उत्कृष्टायुष्य—	जघन्यायुष्य—
१	२ सागरोपम	१ पल्योपम
२	२ सागर साधिक	१ पल्योपम साधिक
३	७ सागरोपम	२ सागरोपम
४	७ सागर साधिक	२ सागर साधिक
५	१० सागरोपम	७ सागरोपम
६	१४ सागरोपम	१० सागरोपम
७	१७ सागरोपम	१४ सागरोपम
८	१८ सागरोपम	१७ सागरोपम
९	१९ सागरोपम	१८ सागरोपम
१०	२० सागरोपम	१९ सागरोपम
११	२१ सागरोपम	२० सागरोपम
१२	२२ सागरोपम	२१ सागरोपम

नं०	ग्रैवयक उ०	जघन्यायु—
१	२३ सागरोपम	२२ सागरोपम
२	२४ सागरोपम	२३ सागरोपम
३	२५ सागरोपम	२४ सागरोपम
४	२६ सागरोपम	२५ सागरोपम
५	२७ सागरोपम	२६ सागरोपम

६	२८ सागरोपम	२७ सागरोपम
७	२९ सागरोपम	२८ सागरोपम
८	३० सागरोपम	२९ सागरोपम
९	३१ सागरोपम	३० सागरोपम
न	अनुत्तर, उ०	जघन्यायु
१	३३ सागरोपम	३२ सागरोपम
२	३३ सागरोपम	३२ सागरोपम
३	३३ सागरोपम	३२ सागरोपम
४	३३ सागरोपम	३२ सागरोपम
५	३३ सागरोपम	०

१८ पर्याप्ति—स्थावर में भाषा, मन इन दो के विना चार, विकलेन्द्रिय में मन विना पाच, और शेष दडकों में छे' पर्याप्ति होती हैं।

१९ आहार—चोवीसों दडक के जीव छ दिशि का आहार लेते हैं। पांचो स्थावर जीव कभी तीन, कभी चार, कभी पाच, और कभी छ. दिशिका आहार लेते हैं।

२० सुसज्ञा—विकलेन्द्रिय में हेतुवादोपदेशिकी, मनुष्य में दृष्टि वादोपदेशिकी, दीर्घकालिकी ये दो और शेष दडकों में दीर्घकालिकी सुमज्ञा होती हैं। स्थावर में इनमें की एक भी

१—आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा, मन ये छ' पर्याप्ति हैं। २—मार्ग म वहता, केवलीसमुद्घात, अयोगी गुणठाणे एव तीन ठिकान जीव अणाहारी रहता है।

नहीं होती, तीनकाल सम्बन्धी वस्तु को जान लेनेवाली को 'दीर्घकालिकी' वर्त्तमानकाल सबन्धी सुख दु.ख को जाननेवाली का 'हेतुवादोपदेशिकी' और क्षयोपशमभाव से होनेवाले वस्तुविज्ञान को 'दृष्टिवादोपदेशिकी' सुसज्ञा कहते हैं।

२१-२२ गति-आगति-पर्याप्ता पचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य मरके भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क, वैमानिक इन तेरह दडक में उपजते हैं और गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य, पर्याप्ता-पृथ्वी, अप्, प्रत्येक वनस्पति, इन पाच दडकों में उक्त तेरह दडक के जीव आते हैं।

पर्याप्ता सख्याता वर्षायुष्क गर्भज-तिर्यंच और मनुष्य नारक म जाते हैं और नारक मरके उन्हीं दो दडक में आते हैं, परन्तु सातवीं नरक का नारक मर के मनुष्य में नहा आता।

पृथ्वी, अप्, वनस्पति इन तीन दडक मे नारक विना तेइस दंडक के जीव जाते हैं और उक्त तीन दडक के जीव स्थावर, विकलेन्द्रिय, तिर्यंच, मनुष्य, इन दश दडक मे आते हैं।

स्थावर, विकलेन्द्रिय, तिर्यंच, मनुष्य, इन दश दडक के जीव मरके अग्नि और वायु में जाते हैं और अग्नि, वायु के जीव स्थावर, विकलेन्द्रिय, तिर्यंच, इन नव दडकों में आते है।

स्थावर, विकलेन्द्रिय, तिर्यंच, मनुष्य इन दश दडक के जीव विकलेन्द्रिय में जाते है और विकलेन्द्रिय जीव उक्त

दश दडक में आते है। गर्भज तिर्यंच चौवीसा दडक में जाते हैं और चोवीसा दडक के जीव गर्भज तिर्यंच मे आते हैं। मनुष्य में अग्नि, और वायु विना बावीस दडक के जीव आते हैं और मनुष्य, चोवीसा दडक मे जाते है।

२३ वेद—स्थावर, विकलेन्द्रिय, नारक इन नौ दडकों में एक नपुसक, गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य मे तीन, और शेप दडकों में स्त्री, पुरुप ये दो वेद होते है। असन्नीमें एक नपुसक वेद ही होता है।

२४ गुणठाणा—मनुष्य में चौदह, तिर्यंचपचेन्द्रिय में पहले पाच, स्थावर में एक मिथ्यात्व, विकलेन्द्रिय में पहले मिथ्यात्व, सास्वादन, ये दो और शेप दडकों मे पहले पाच गुणठाणा होते हैं।

२५ अल्पाबहुत्व—सबसे थोडे मनुष्य १, इनसे वैमानिक देव असख्यात गुणाधिक २, इनसे भवनपति असख्यात गुणाधिक ३, (१०) इनसे नारक असख्यात गुणाधिक १३, इनसे व्यतरदेव असख्यात गुणाधिक १४, इनसे ज्योतिष्क देव असख्यात गुणाधिक १५, इनसे पचेन्द्रिय तिर्यंच असख्यात गुणाधिक १६, इनसे चतुरिन्द्रिय विशेषाधिक १७, इनसे त्रीन्द्रिय विशेषाधिक १८, इनसे द्वीन्द्रिय विशेषाधिक १६, इनसे अग्नीकायिक असख्यात गुणाधिक २०, इनसे पृथ्वीकायिक असख्यात गुणाधिक २१, इनसे अप्कायिक असख्यात गुणाधिक २२, इनसे वायुकायिक असख्यात गुणाधिक २३, इनसे वनस्पतिकायिक असख्यात गुणाधिक है २४

२६ प्राण—स्थावर में स्पर्श, कायबल, श्वासोच्छ्वास, आयु ये चार, द्वीन्द्रिय के स्पर्श, रसन, वचनबल, कायबल श्वासोच्छ्वास, आयु ये पाच, त्रीन्द्रिय के स्पर्श, रसन, घ्राण, वचनबल, कायबल, श्वासोच्छ्वास, आयु ये सात, चतुरिन्द्रिय के स्पर्श, रसन, घ्राण, चक्षु, वचनबल, कायबल श्वासोच्छ्वास, आयु ये आठ, असज्ञी पचेन्द्रिय-मनुष्य तिर्यंच के मनोबल विना नौ और शेष दडको में दश प्राण होते है।

२७ जीवभेद—नारक, भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क, वैमानिक, गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य इन सोलह दडक में सज्ञीपचेन्द्रिय-पर्याप्ता, अपर्याप्ता, ये दो, स्थावर में सूक्ष्मपर्याप्ता अपर्याप्ता, बादर-पर्याप्ता, अपर्याप्ता ये चार, असज्ञी तिर्यंच पचेन्द्रिय मे असज्ञी-पर्याप्ता, अपर्याप्ता ये दो, असज्ञी मनुष्य में असज्ञी-अपर्याप्ता एक और विकलेन्द्रिय-में विकलेन्द्रिय पर्याप्ता अपर्याप्ता ये दो दो जीवभेद होते है।

२८ सयंतादि—पचेन्द्रिय तिर्यंच में सयताऽसयत. विरताविरति, असयत, अविरति ये चार, मनुष्य मे छः और शेप दडक में असयत, अविरति, ये दो सयतादि भेद होते हैं।

१-स्पर्श, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, मनोबल, वचनबल, कायबल, श्वासोच्छ्वास, आयु ये दश प्राण कहाते है।

१ सयत, असयत, सयताऽसयत, विरति, अविरति, विरताऽविरति, ये छः सयतादि भेद कहाते हैं।

८६ नरक का प्रतर, और नरकावासा—

पहली में प्रतर १३, नरकावासा ३० लाख है, दूसरी में प्रतर ११, नरकावासा २५ लाख है, तीसरी मे प्रतर ६, नरकावासा १५ लाख है चौथी में प्रतर ७, नरकावासा १० लाख है, पाचवी में प्रतर ५, नरकावासा ३ लाख हैं, छट्ठी में प्रतर ३, नरकावासा ६५ हजार हैं और सातवीं में प्रतर १, नरकावासा ५ है।

८७ देवलोकों का प्रतर, और विमान—

पहले देवलोक मे प्रतर १३, विमान ३२ लाख है, दूसरे में प्रतर १३, विमान २८ लाख है, तीसरे में प्रतर १२, विमान १२ लाख है, चौथे मे प्रतर १२, विमान ८ लाख है, पाचवें में प्रतर ६, विमान ४ लाख है, छट्ठे म प्रतर ५, विमान ५० हजार हैं, सातवे में प्रतर ४ विमान ४० हजार है, आठवें मे प्रतर ४, विमान ६ हजार है नौवें दशवें मे प्रतर ४, विमान ४०० हैं, ग्यारहवें बारहवें मे प्रतर ४, विमान ३०० हैं, ग्रैवेयक के पहले त्रिक मे प्रतर ३, विमान १११ हैं, दूसरे त्रिक म प्रतर ३, विमान १०७ है, तीसरे त्रिक मे प्रतर ३, विमान १०० है और अनुत्तर म प्रतर १, विमान चार है।

८८ व्यवहार—सम्यक्त्व का स्वरूप—

१ अठारह दोष रहित अरिहत भगवान् और उनकी पद्मासनस्थ या कायोत्सर्गस्थ मूर्त्ति के सिवाय दूसरे किसी देव को शुद्धदेव मानना नहीं। यदि ससार मे आत्म—हित करने वाले

हैं तो एक अरिहंतदेव या उनका बिम्ब ही है ऐसा विश्वास (श्रद्धा) रखना।

२ पांच महाव्रतों के धारक, पांच समिति और तीन गुप्ति के पालक, षटकायिक जीवों के रक्षक, तीर्थंकरोक्त—जैनागमानुसारी क्रिया के कारक, बयालीस दोष रहित आहार के भोक्ता, श्वेत, मानोपेत, जीर्णप्राय वस्त्रों के और साधु के सत्ताईस गुणों के धारक को शुद्ध—गुरु मानना।

पात्र ३, पात्रबंधन (झोली), पात्र के नीचे रखने का कंबल खंड, पात्र—पूजनी, पडला, रजस्त्राण, गुच्छा, सूती चादर २, शरीरप्रमाण—ऊनी कांबली, चोलपट्टा, मुखवस्त्रिका, रजोहरण (ओघा), मात्रक, इन चौदह उपकरणों और पाद—पूछना दंडा, शय्या, संथारा, फलक इन पांच औपग्रहिक उपधि के सिवाय अधिक उपकरण न रखे।

गृहस्थों के पास अपना कोई भी काम नहीं करावे, अपने उपकरण गृहस्थों से नहीं तुकवावे, गृहस्थों को कुशल—क्षेम संबंधी पत्र नहीं लिखे बावन अनाचार सेवन करे नहीं, संथारा पोरसी भणाये बिना नहीं सोवे, दोनों टाइम जयणा से पडिलेहन प्रतिक्रमण आदि क्रियाओं को करे, आचार्यादि बड़ों की आज्ञा में चाले, नवकल्पी विहार करे, स्थिर मुकाम

१ सवा हाथ चौड़ा और ढाई हाथ लंबा वस्त्र, जो गोचरी जाते समय पात्र—झोली पर ढांकने के काम में आता है। शीतकाल में ४, उष्णकाल में ३ और बारिश में ५ पडला रखना चाहिये।

करके एक ही गाँव में नहीं पड़े रहे, सावद्य वचन न बोले, निर्दोष वचन भी कार्य पूरता बोले, माडला किये बिना मात्रा आदि न परठे, गुरु आदिक की आशातना न करे, छेद ग्रन्थों का गुरुगम से ज्ञान प्राप्त किये विना अकेला विहार न करे; इत्यादि गुणों का धारक हो शुद्ध-गुरु कहलाता है।

पाच प्रकार के गुरुओं का त्याग करे। १ **पासत्था**-जो राज पिंड लेते हो, नित्य एक ही घर का आहारादि लेते हों, जीमनवार (संखडी) में बहोरने को जाते हों और ज्ञान, दर्शन चारित्र से भ्रष्ट हों। २ **ओसन्ना**-जो विना कारण पाट पाटला वापरते हो, समाचारी में शिथिल हो, छती शक्ति बैठ के पडिक्कमण या न्यूनाधिक क्रिया लोक दिखाउ करते हों, योगवहन क्रिया विना या अकाले सिज्झाय करते हों, गलियार बलद के समान संयम को पालन करते हों। ३ **कुशीलिया**-जो सूत्रार्थ को मरोडते हों, सम्यक्त्व में शंका कांक्षा रखते हो, गुरु वचन की अवज्ञा, और यंत्र मंत्र तंत्र जोतिष औषध आदि आजीविका करते हो। ४ **संसत्ता**-जो साधु में साधु के समान और असाधु में असाधु के समान बन जाते हो। ५ **अहच्छंद**-स्व इच्छा प्रमाणे चलते हों, अपनी मनमानी क्रिया करते हों, और आचार्य आदि का अवर्णवाद बोलते हो। ये पाच प्रकार के कुगुरु है, समकित धारी इनको वादे पूजे नहीं और इनका आहारादिकसे सत्कार करे नहीं।

इसी प्रकार प्रतिमा उत्थापक, दया उत्थापक, यथार्थ साधु

वेश के उत्थापक और द्रव्यपूजा में साजबाज के साथ गानेवाले साधुओं को भी शुद्ध-गुरु समझे नहीं और कदापि इन भ्रष्टाचारियों की सोबत कर नहीं।

३ केवली-भाषित विनयमूल, दयामूल और आज्ञामूल धर्म सत्य माने, नवतत्त्व, षट्द्रव्य, सात नय, चार निक्षेप आदि से सिद्ध सूक्ष्म बादर पदार्थों को सत्य समझे इस प्रकार तीनों तत्त्वों को अच्छी तरह जान कर उनकी सत्यता पर दृढ विश्वास रखना इसीको व्यवहार सम्यक्त्व कहते हैं।

८९ निश्चयसम्यक्त्व का स्वरूप—

यथाप्रवृत्ति करण की स्पर्शना से पुरुष मिथ्यात्वरूप गाँठ के समीप आते हैं और आयुष्य विना सात कर्मों की स्थिति को कुछ कम एक कोडाकोडी सागर की बाकी रखते हैं फिर अपूर्वकरण का अवलम्बन करके शुद्ध परिणाम से राग द्वेष रूप मिथ्यात्व की गाँठ को काटना शुरू करते हैं। बाद में विशुद्ध परिणाम से अनिवृत्तिकरण का आश्रय लेके और मिथ्यात्व की गाँठ को छेदन करके सम्यक्त्व प्राप्त करते हैं। अर्थात्-अनतानुबन्धी क्रोध १, मान २, माया ३, लोभ ४, सम्यक्त्व-मोहनीय ५, मिथ्यात्वमोहनीय ६, मिश्रमोहनीय ७ इन सात प्रकृति के क्षयोपशम से जीवों को निश्चय समकित मिलता है।

निश्चय सम्यक्त्वी जीव, संसार से विरक्त होकर भावों की तीव्रता से कितने एक चारित्र लेते हैं, कितने एक भावों की मन्दता से श्रावक के बारह व्रतों को पालन करते हैं और

कितन एक अविरति के उदय से केवल सम्यक्त्व को ही पालन करते हैं और निरतिचार सम्यक्त्व में दृढ रह कर शासनोन्नति, धर्मोन्नति, गुरु सेवा, स्वधर्मी–भक्ति आदि सम्यक्त्व को निर्मल करने वाली क्रियाओं में निरंतर कटिबद्ध रहते हैं।

निश्चय–समकित को धारण करनेवाले महानुभाव पेश्तर आयु का बंध नहीं पडा हो तो देवगति का बंध करते हैं और निश्चयसमकित के ही प्रभाव से तीर्थंकर नामकर्म भी उपार्जन करते हैं। व्यवहार सम्यक्त्व भी निश्चय सम्यक्त्वका कारण है। क्योंकि व्यवहारसमकित के बाद ही निश्चय समकित होता है और निश्चय–सम्यक्त्वी को भी व्यवहार समकित की मर्यादा साचवनी पड़ती है।

९० समकितधारी के त्याज्य बातें—

धर्म को अधर्म मानना १, अधर्म को धर्म मानना २, खोटे मार्ग को अच्छा समझना ३, अच्छे को खोटा समझना ४, जीव को अजीव मानना ५, अजीव को जीव मानना ६, साधु को असाधु मानना ७, असाधुको साधु मानना ८, मोक्षगामी को अमोक्षगामी मानना ९, अमोक्षगामी को मोक्षगामी मानना १०, खोटे मार्ग के आग्रह को न छोड़ना ११, सभी देवों को देव और सभी साधुओं को साधु बुद्धि से मानना १२, खोटा जान कर भी उसको नहीं छोड़ना १३, संसार के धर्मों में न मालुम कौनसा धर्म सत्य है ? ऐसा संशय रखना १४, धर्म और अधर्म के मर्म को

न समझ कर गाडरिया प्रवाह की रूढी में चलना १५, मिथ्यात्वी, कुलिंगी और पासत्थाओं का आदर सत्कार करना १६, देवद्रव्य, ज्ञानद्रव्य और साधारणद्रव्य की सार-सभाल न करना १७, देवद्रव्यादि भक्षण करना या उसका विनाश करना १८, मुनि का घात या उसको सयम से भ्रष्ट करना १९, साध्वी के साथ मैथुन सेवन करना या कराना २०, और श्रीसंघ का अवर्णवाद बोलना २१, ये इकीस बातें समकित को नाश करने वाली हैं अतएव समकितधारियों को ये बातें बिलकुल छोड देना चाहिये।

९१ समकितधारी क ग्राह्य बातें—

प्रतिवर्ष एक या दो यात्रा करना १, दीन हीन दुःखी की सार संभाल करना २, नित्य जिन-दर्शन, जिन-पूजा और गुरु दर्शन करना ३, स्वधर्मीभाइयों को सहायता देना ४, प्रतिवर्ष रथयात्रा या जलयात्रा निकालना ५, देवगुरु को देख कर आनंदित होना ६, धार्मिक उन्नति के कार्यों में अग्रेसर बनना ७, सौ योजन तक भी गुरु हो तो उनको वादने को जाना ८, अरिहत सिवाय किसी देव की सहाय न चाहना ९, महा आरभ समारभ का कार्य नहीं करना १०, जीव अजीव आदि नौ तत्त्वों का ज्ञान गुरुगम से धारण करना ११, हर-एक कार्य को जयणा से करना १२, बत्तीस अनंतकाय और बाईस अभक्ष्य छोडने की खप रखना १३, लडाई झगडा नहीं करना १४, लोक विरुद्ध कार्यों का त्याग करना १५, सम्यक्त्व के सतसठ बोल अर्थसह सीखना १६, अतिचारादि दोष

लगने पर गुरु के पास उनका दंड लेना १७, मिथ्यात्वियों का परिचय और लौकिक मिथ्यात्वों को छोडने की खप करना १८, हमेशा नोकार मंत्र का ध्यान करना १६, जिन मन्दिर जिन-प्रतिमा, ज्ञान, साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका, इन सात क्षेत्रों में ही यथाशक्ति धन लगाना २०, चारों कषायों को कम करने की खप रखना २१, ये इक्कीस बातें समकित को निर्मल करने वाली हैं अतएव समकित धारियों को उक्त बातें अवश्य धारण करना चाहिए।

६२ आर्यदेश और नगरी—

नं०	देशनाम—	नगरीनाम—	गांव संख्या
१	मगधदेश	राजगृही नगरी	१००६६०००
२	अंगदेश	चंपानगरी	५५००००
३	बंगदेश	ताम्रलिप्तीनगरी	८००००
४	कलिंगदेश	कंचनपुरी	१०००००
५	काशीदेश	वाणारसीनगरी	१६५०००
६	कोशलदेश	साकेतपुरी	६६०००
७	कुरुदेश	गजपुरी	८२३४२५
८	कुशावर्तदेश	शोरीपुर	१४३००
६	पांचालदेश	कंपिलपुर	३८३०००
०	जांगलदेश	अहिच्छत्रा	१४५०००
११	सौराष्ट्रदेश	द्वारावति	६८०५२३
१२	विदेहदेश	मिथिला	८०००
१३	वत्सदेश	कोसंबी	२८०००

१४	साडिल्यदेश	मन्दिरपुर	१६०००
१५	मलयदेश	भद्दिलपुर	७०००
१६	विराटदेश	वैराटपुर	२८०००
१७	वरणादेश	यच्छपुर	४२०००
१८	दशार्णदेश	मृत्तिकावति	१८०००
१९	चेदीदेश	सूक्तिकावति	२४०००
२०	सिन्धुदेश	विनीतानगरी	६०५००
२१	सोवीरदेश	मथुरानगरी	८०००
२२	शूरसेनदेश	पावापुरी	३६०००
२३	भगदेश	मासपुरी	१४२५
२४	कुणालदेश	श्रावस्तीनगरी	६३०००
२५	लाटदेश	कोटिवर्षनगर	२१३०००
,,	केकयीअर्द्धदेश	श्वेताम्बिका	२५८०००

६३ प्रतिमापूजा विषयक विचार—

सूत्रकारोंने वस्तुसिद्धि के वास्ते चार निक्षेपा दिखलाये है-नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। नामनिक्षेप-ऋषभदेव यह नाम १, स्थापना-ऋषभदेव भगवान् की पद्मासन या कायोत्सर्ग मुद्रा की मूर्त्ति २, द्रव्य-ऋषभदेवस्वामी का जीव ३, और भाव-आठ प्रातिहार्य और चौतीस अतिशय से समवसरण में विराजमान ऋषभदेवस्वामी। इसी प्रकार सभी वस्तुएँ चार निक्षेपा से सिद्ध हैं।

१ इसका दूसरा नाम वात्स्यदेश भी है

जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमा स्थापना निक्षेप में होने से साधु और श्रावक दोनों के वन्दन तथा पूजन करने योग्य है। साधुओं के सावद्ययोग का त्याग है इसलिये वे भावपूजा और श्रावक द्रव्य तथा भावपूजा करते हैं।

प्रश्न—प्रतिमा में ज्ञान, दर्शन, चारित्र नहीं इससे वह वन्दने पूजने योग्य नहीं हो सकती ?

उत्तर—प्रतिमा के देखने से तीर्थंकरों का स्मरण रूप ज्ञान होता है और वे ऐसे आसन से मोक्ष गये, उनकी जैसी शांत मूर्त्ति है वैसी शान्ति रखने से मोक्ष मिलती है, ऐसा स्वाभाविक ज्ञान प्रगट होता है, उसको सत्य समझना दर्शन है और ऐसी ही अवस्था प्राप्त होना चारित्र है। अतएव जिन प्रतिमा में तीनों चीजें मौजूद हैं इससे वह वन्दने पूजने योग्य ही है। अगर ऐसा नहीं माना जाय तो 'नवकार' भी नाम है उसमें भी ज्ञान दर्शन चारित्र नहीं है इससे उसको भी जपना व्यर्थ हो जायगा।

प्रश्न—नवकार के जपने से तो आत्म परिणाम निर्मल होते हैं जिससे कर्मनिर्जरा होकर मोक्ष मिलता है ?

उत्तर—इसी तरह जिनप्रतिमा के दर्शन पूजन से आत्मा शांतरस पैदा होता है और उससे सम्यक्त्व की निर्मलता होती है जोकि कर्मनिर्जरा करके मोक्ष पहुंचानेवाली होती है। जैसी वस्तु होगी उसके देखने से वैसे ही भाव पैदा होंगे यह एक कुदरती नियम है। आचारांगसूत्र और दशवैकालिकसूत्र

में आज्ञा दी गई है कि ' साधु अथवा साध्वी स्त्रियो या स्त्री पुरुषों के भोगासन चित्रित स्थान में नहीं ठहरें ' इस आज्ञा का मतलब यही है कि स्त्रियों के या स्त्रीपुरुषों के भोगासन के चित्रों को देखने से विषयजन्य विकार पैदा होता है. इसीसे वैसी जगह में ठहरने की मुमानियत है। अब सोचो कि निर्जीव स्त्रियों या भोगासन का चित्र भी विकार पैदा करनेवाला है तो भला निर्दोष और भगवत्स्वरूप जिनप्रतिमा बोधीज्ञान पैदा करने वाली और मोक्ष देनेवाली क्यो नहीं ? अवश्य ही है।

प्रश्न—किसी स्त्री का पति मर गया. उसने मिट्टी, काष्ट या चित्र का पति बनाया तो उससे क्या उस स्त्री की गर्ज सर सक्ती है।

उत्तर—अगर यही बात मानी जाय तो वही स्त्री अपने मृतपति का नाम जपे तो क्या उसमे उसकी गर्ज सर सकेगी ? यदि कहा जाय कि नहीं। तो फिर खाली भगवान् का नाम जपना भी निष्फल हो जायगा। व्यवहारदृष्टि से शुद्ध वेश ही साधु का प्रमाण माना जाता है, अत शुद्ध वेश धारी साधु को व्यवहार दृष्टि से उसकी शुद्ध-क्रिया देख कर वंदन करने से वंदन करनेवाले को लाभ माना जाता है और प्रतिमा को न माननेवाले भी साधुओ के आन्तरिक भावो की शुद्धता को न जानते हुए भी केवल शुद्ध वेश धारी साधु को वंदन करने में लाभ समझते है। इसी तरह भगवान् के शुद्ध स्थापना निक्षेप के वंदन पूजन से लाभ मानना ही पड़ेगा। नाम स्थापना ये दोनो

आलम्बनरूप ध्यान है। आलम्बनरूप शुद्ध ध्यान का फल कर्म निर्जरा है जो मोक्ष का उत्तरोत्तर कारण है।

जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री अपने पती की तदाकार मूर्त्ति या चित्र देख कर हर्ष-विषाद के वशीभूत होती है उसी प्रकार जिनेन्द्र भगवान् की उपशमरस निमग्न मूर्त्ति को देख कर शुद्ध श्रद्धालु समकितदृष्टि प्रसन्न होता है और मूर्त्ति को जिनस्वरूप समझ कर उसकी सेवाभक्ति करके अपनी आत्मा को तत्स्वरूप बनाने की भावना भाता है।

भगवतिसूत्र में जमालि के अधिकार में लिखा है कि जमालीने भगवान के पास दीक्षा ली तब उसकी माताने यह कह कर कि "भगवन्! जमाली के शिर के केश मैं लूंगी, इन्हें देख कर अपने दिल को प्रसन्न करूंगी अब मेरे को इन्हीं केशों का आधार है, जमाली के शिर के केश ले लिये।" इस कथन से जाहिर होता है कि जमाली के केश भी उसकी माता की हृस पूर्ण करनेवाले समझे गये तो भला साक्षात् जिनेश्वरों की तदाकार मूर्त्ति आनंद देनेवाली हो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

प्रश्न—सूत्रों में तो जिनप्रतिमा का अधिकार कहीं भी नहीं है, यह तो बारह काली में ढीले साधुओंने चलाई है। भोले जीवों को भर्म में या उनको ठगने वास्ते स्वार्थी साधुओंने प्रतिमा-पूजा जारी की है।

उत्तर—परार्थ करने को ही स्वार्थ समझनेवाले स्वार्थी

जिनेश्वरोंने ही भव्य जीवों के उपकारार्थ खास जैनागमो में प्रतिमापूजा प्रतिपादन की है। वर्त्तमानकाल में नन्दीसूत्र के कथनानुसार जो आगम मौजूद हैं वे सर्वज्ञ सर्वदर्शी जिनेश्वर-प्रणित माने जाते है, उन्हीं में से यहाँ कितनेएक आगमो के प्रमाण दिये जाते हैं। श्रीरायपसेणी सूत्र में सूर्याभदेव के अधिकार में लिखा है कि—

तएण से सूरियाभदेवे पोत्थयरयण वाएति वाएत्तित्ता धम्मिय ववसायं गिण्हति गिण्हित्ता पोत्थरयण पडिनिक्खमेति २ त्ता सिंहासणाओ अब्भुट्ठेति २ त्ता ववसायसभाओ पुरच्छिमिल्लेणं दारेण पडिनिक्खमइ २ त्ता जेणेव नन्दा पुक्खरणी तेणेव उवागच्छइ २ त्ता नदा पुक्खरणीए पुरच्छिमिल्लेण तोरणेण तिसोवाणपडिरूवेण पच्चोरुहति २ त्ता तत्थ हत्थपाद पक्खालेति २ त्ता आयते चोक्खे परमसुइभूए एग महं रययामय विमलसलिलपुण्ण मत्तगयमुहा गिइसमाण भिंगार पगिण्हति २ त्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं जाव सहस्सपत्ताइं ताइं गिण्हति २ त्ता नंदा पुक्खरणीओ पच्चोरुहइ २ त्ता जेणेव सिद्धायतणे तेणेव पहारेत्थ गमणाए (इत्यादि) जाव बहूहिं देवेहि य देवीहिं य सद्धिं सपरिवुडे सव्वड्ढिए जाव वाइयरवेण जेणेव सिद्धायतणे तेणेव उवागच्छइ सिद्धायतण पुरच्छिमिल्लेण दारेण अणुपविसइ २ त्ता जेणेव देवच्छंदए जेणेव जिणपडिमा तेणेव उवागच्छइ २ त्ता जिणपडिमाणं आलोए पणाम करेइ २ त्ता लोम-

१ जहां क्रियापद के आगे २ का अंक आवे वहां सभी जगह दूसरा क्रियापद तृतीयाय त्वप्रत्ययान्त से बोलना चाहिये।

हत्थग परामुसइ २ त्ता लोमहत्थग गिण्हइ २ त्ता जिणपडि-माओ लोमहत्थेण पमज्जइ २ त्ता जिणपडिमाउ सुरभिगधोद-एण ण्हाणेइ २ त्ता सरसेण गोसीसचन्दणेण गाइ अणुलिपइ २ त्ता जिणपडिमाण अहयाइ देवदूसजुअलाइ नियसेइ २ त्ता अग्गेहिं वरेहिं गधेहिं अचेइ २ त्ता पुप्फारोहण मल्लारोहण वण्णारोहण चुण्णारोहण वत्थारोहण आभरणारोहण करेइ २ त्ता आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलाव करइ २ त्ता जाव करग्गहगहिय करयलपभट्ठविप्पमुक्केण दसद्धवण्णेण कुसुमेण मुक्क-पुप्फपुजोवयारकलिय करेइ २ त्ता जिणपडिमाण पुरओ अच्छ-हिं सण्हेहिं रययामएहिं अट्ठमगल आलिहइ। त जहा–सुत्थिय १ सिरिवच्छ २ नदियावत्त ३ वद्धमाण ४ भद्दासण ५ कलस ६ मच्छ ७ दप्पण ८ तयाणतर च ण चदप्पभरयण वइरवेरुलिय विमलदड कचणमणिरयणभत्तिचित्त कालागुरुपवरकुदुरुक्कतुरुक्क धूममघमघतगधुत्तमाणुविद्ध धूमवट्टि विणिम्मुयत वेरुलियमय कडुच्छ पग्गहिय पयत्तेण धूव दाऊण जिणवराण अट्ठसयवि सुद्ध गथजुत्तेहिं महावित्तेहिं अत्थजुत्तेहिं अपुणरुत्तेहिं सथुणइ २ त्ता सत्तट्ठपयाइ ओसरइ २ त्ता वाम जाणु अचेइ २ त्ता दा-हिणजाणु धरणितलसि निहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाण धरणितलमि निवाडेइ २ त्ता ईसिपच्चुन्नमइ २ त्ता करयलपरिग्गहिय सि रसावत्त दसणह मत्थए अजलि त्ति कट्टु एव वयासी नमोत्थुण अरिहताण जाव ठाण सपत्ताण त्ति कट्टु वन्दइ नमसइ त्ति।

इसी प्रकार का जीवाभिगमसूत्र और जम्बूद्वीपपन्नत्तिसूत्र में विजयदेव के अधिकार में पाठ है और सिद्धायतनो (मन्दिरो)

क अधिकार में जिनप्रतिमाओं का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। भगवतिसूत्रमें सुधर्मसभा के वर्णन में जिनचैत्य गत प्रतिमाओं की आशातना न करने का उल्लेख है। ज्योतिष्क विमानों में जिनप्रतिमायें है, इससे वहाँ चैत्यवाले विमानों में देवी के साथ सभोगादि कर्म देवता नहीं कर सकते ऐसा सूत्रो में स्पष्ट लेख मौजूद है। अतएव सिद्ध हुआ कि जिनप्रतिमा निःसदेह वदन पूजन करने योग्य है। अब विचारो कि जब खास सूत्रो में ही जिनप्रतिमा और उसकी विधिपूर्वक पूजा का अधिकार मौजूद है तो बारह काली में ढीले साधुओंने प्रतिमा पूजा चलाई है। इत्यादि उन्मत्त-प्रलाप कैसे सत्य माना जा सकता है ?

प्रश्न—देवता के अधिकार में तो यक्षप्रतिमा है, जिन प्रतिमा नहीं, इससे उसका वदन पूजन कैसे किया जाय ?

उत्तर—जरा मति-मान्यता को हटाकर नेत्रो से देखा जाय तो रायपसेणीसूत्र का पाठ जो ऊपर दिया गया है। उसमें 'जिणपडिमाए आलोए पणाम करेइ' 'जिण-पडिमाए पुरओ' इत्यादि वाक्यो मे 'जिणपडिमा' यह शब्द जिनेश्वरो की प्रतिमा का बोधक है या यक्षप्रतिमा का ? । क्योंकि आगे चलकर सूत्रकारने और भी 'धूव दाउण जिणवराण' इस वाक्य से जिनप्रतिमा ही ऐसा स्पष्ट लिख दिया है। भला सोचना तो चाहिये कि सूर्याभ और विजय ये दोनो महर्द्धिक देव है, वे अपने से कनिष्ट जाति

के यक्ष की प्रतिमा का वंदन पूजन किस तरह करेंगे ? और तीर्थंकर स्तुति गर्भित नमोत्थुणं का पाठ यक्षप्रतिमा के आगे क्यों कर कहेंगे ?

सूर्याभदेव के पास गुरुस्थानीय देवोंने आकर कहा कि भो देवाणुप्पिय ! आपके लिये पहले और पीछे हितकारी, सुखकारी, मोक्षकारी जिनपडिमा की पूजा है अतएव आप को जिनप्रतिमा की पूजा करना चाहिये, इस कथन से भी जिन-प्रतिमा की पूजा करना ही सिद्ध है, यक्षप्रतिमा की नहीं। इससे जिनप्रतिमा का वंदन पूजन करना युक्त ही है।

प्रश्न—जिनप्रतिमा को देवता लोग अधिकार (होदा) या व्यवहार से पूजते हैं, आत्मार्थ नहीं ?

उत्तर—खुद सूत्रकार ही जिनप्रतिमा की पूजा को 'हियाए, सुहाए निस्सेसाए' हित करनेवाली, सुख देनेवाली और मोक्ष देनेवाली फरमाते हैं तो उक्त प्रश्न करने का अवकाश ही नहीं रहता। क्योंकि जो क्रिया हित, सुख और मोक्ष देनेवाली होती है वह आत्मार्थ ही मानी जाती है। चाहे वह अधिकार से या व्यवहार से की जाय परन्तु प्रतिमा-पूजा लाभदायक तो अवश्य ही माननी पडेगी।

प्रश्न—जिनप्रतिमा की पूजा देवोंने की है सो तो सही है, परन्तु किसी श्रावक, श्राविका या साधुने नहीं की इससे वह अमान्य है ?

उत्तर— भगवतीसूत्र में तुंगियानगरी के श्रावक स्थविरों

को वंदन करने वास्ते 'एहायाकयबलिकम्मा' स्नान और देवपूजा करके गये। इसी प्रकार शखजी, पुष्कलजी आदि श्रावक भी स्नान और देवपूजा करके भगवान् को वंदन करने को गये ऐसा स्पष्टरूप से लिखा है। तुंगियानगरी के श्रावक, शखजी, पुष्कलजी आदि दृढ सम्यक्त्वी थे, वे अरिहंतदेव सिवाय दूसरे अन्य देवों को स्वप्न में भी याद नहीं करते थे। इससे उन्होंने जिनप्रतिमा की ही पूजा की है, यक्ष, नाग, भूत, आदि की प्रतिमा की नहीं।

उववाइजीसूत्र के लेखानुसार अंबडपरिव्राजकने और उपासकदशांगजी सूत्र के कथनानुसार आनन्द, कामदेव आदि श्रावकोंने भगवान् के पास सम्यक्त्व लेते वक्त स्पष्ट प्रतिज्ञा की है कि—

अंबडस्सण परिवायगस्स णो कप्पति अन्नउत्थिए वा अन्नउत्थियदेवयाणि वा अन्नउत्थियपरिग्गहियाणि अरिहंतचेइयाणि वा वंदित्तए वा नमंसित्तए वा जाव पज्जुवासित्तए वा णगत्थ अरिहंते वा अरिहंतचेइयाणि वा (उववाइजी सूत्र).

णो खलु मे भंते! कप्पइ अज्जप्पभिइउ अण्णउत्थियदेवयाणि वा अण्णउत्थियपरिग्गहियाइ अरिहंतचेइयाणि वा वंदित्तए वा नमंसित्तए वा (उवासगदसांगजी सूत्र).

—हे भगवन्! आज पीछे अन्यमति सांख्यादि साधु, उनके देवी देव, और अन्यमति ग्रहित जिनप्रतिमा आदि को वंदन करना, नमस्कार करना मेरे को नहीं कल्पता। अरिहंत

ओर अरिहंत की प्रतिमा का वन्दना, नमना यावत् पूजा करना कल्पता है।

इन दोनों सूत्र-पाठों से साफ जाहिर होता है कि श्रीवीर प्रभु के मुख्य श्रावक शंख, पुष्कल, अंबड, आनंद, कामदेव आदिने जिनप्रतिमा की पूजा करना समकित लेते समय नियम रूप से जारी रक्खी है। श्रीज्ञातासूत्र में द्रौपदी के अधिकार में कहा गया है कि—

तएणं सा दोवइरायवरकन्ना ण्हाया कयबलीकम्मा कयकोउमंगलपायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं मंगलाइं वत्थाइं पवरपरिहिया मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ जेणेव जिणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जिणघरं अणुपविसइ आलोए पणामं करेइ लोमहत्थं परामुसइ एवं जहा सूरियाभे जिणपडिमाओ अच्चेइ तहेव भाणियव्वं जाव नमोत्थुणं।

—द्रौपदी राजकन्याने स्नान, कौतुक मंगल और सुंदर शुद्ध वस्त्र धारण करके स्नानागार से निकल के जिनमन्दिर में प्रवेश और जिनप्रतिमा को नमस्कार किया। बाद में मयूरपींछ से जिनप्रतिमा को पूंजी और विधिपूर्वक सूरियाभदेव के समान पूजा की।

इसी प्रकार सुलसा, रेवती, जयंती आदि श्राविकाओंने भी जिन-प्रतिमा की पूजा की है क्योंकि ये सभी श्राविकायें दृढ-समकितिनी और अन्य देवों के वन्दन पूजन का त्याग करने वाली हैं।

प्रश्न—द्रौपदी राजकन्याने पूर्वभव में नियाणा किया था इससे वह मिथ्यात्विनी थी तो उसकी की हुई पूजा-प्रमाण नहीं।

उत्तर—शास्त्रकारों का कथन है कि नियाणा से समकित का नाश होता है और सम्यक्त्व का विराधक पहले देवलोक से ऊपर नहीं जा सकता। द्रौपदी राजकन्या पिछले भव में दूसरे देवलोक में गई थी, इससे वह समकित की विराधिका न होने से मिथ्यात्विनी नहीं परंतु दृढ सम्यक्त्विनी ही सिद्ध होती है। दूसरी बात यह कि किसी सूत्र में द्रौपदी को मिथ्यात्विनी लिखी नहीं है। प्रत्युत कहा गया है कि—जब नारदजी आये तब द्रौपदी राजकन्याने उनको अविरति अपच्चक्खाणी समझ कर आदर सत्कार नहीं दिया। इसलिये द्रौपदी को समकितिनी मानने में किसी तरह का विरोध नहीं है। अतएव द्रौपदीने जिनप्रतिमा की पूजा आत्मकल्याण के वास्ते की है, सो प्रमाण—सिद्ध ही है।

प्रश्न—जिनपूजा में हिंसा होती है और हिंसा की करणी में धर्म नहीं इससे जिनपूजा करना ठीक नहीं है ?

उत्तर—जिनपूजा को किसी सूत्र में हिंसा कही नहीं है। उलटा प्रश्नव्याकरणसूत्र में लिखा है कि अहिंसा के साठ नाम जो सवर के कारण हैं उनमें 'जण्णो' याने भावपूजा और 'पूया' याने द्रव्यपूजा ये दोनों अहिंसा के ही नाम हैं। इससे साफ मालूम हो सकता है कि जिनप्रतिमा की द्रव्यपूजा तथा भावपूजा अहिंसा है और अहिंसा की करणी में धर्म

(सवर) है । सूयगडागजी सूत्र म नागपूजा भूतपूजा आदि को अनर्थदंड मे गिनी है, लेकिन जिनपूजा को अनर्थदड में नहीं गिनी । इससे भी जिनपूजा में हिंसा नहीं है यही सिद्ध होता है।

उपर कहा गया है कि समक्तिधारी सूर्याभदेव, विजयदेव, आणंद, कामदेव, अरड, शखजी, पुप्फलजी, द्रौपदी, सुलसा, रवती, जयती आदिकों ने जिनपूजा " हियाए सुहाए खेमाए निस्सेसाए आणुगामित्ताए भविस्सई ' ऐसा समझकर की है। यदि जिनपूजा में हिंसा होती तो ये धर्म समझकर जिनपूजा क्यो करते ? क्योंकि समक्तिधारी हिंसा में धर्म नहीं मानते। परतु उनने तो जिनपूजा को हितकारी, [illegible], कल्याणकारी, और मोक्षकारी जान कर आदरणी है।

चमरेन्द्र जिनप्रतिमा का शरण लेकर उचा गया (भगवतीसूत्र) भगवान् आदिनाथस्वामी के अग्निसस्कार की भूमिपर इन्द्रन 'जिणभत्तिए' जिनभक्ति के और 'धम्मत्तीए' धर्म के वास्ते जिनेश्वर (ऋषभदेवजी) के स्तूप याने चोतरा बनवा के चरण पादुका स्थापन की (जम्बूद्वीपपन्नत्तिसूत्र)

सोचो कि जिनपूजा में हिंसा होती तो सूत्रकार को जिनभक्ति और धर्म ' के वास्ते कहने की क्या आवश्यकता थी ? अतः सिद्ध हुआ कि जिनपूजा में हिंसा नहीं है, धर्म है। इसीसे वह समक्तिदृष्टियों को अवश्य करने लायक, और उसमें धर्म मानने लायक है।

अगर तत्त्वदृष्टि से देखा या विचारा जाय तो श्रावक (गृहस्थ) प्रमादी हैं उनको हमेशा गुरु का समागम मिलता नहीं है। ऐसी अवस्था में वे बिना आलंबन के धर्म नहीं कर सकते, इससे उनको किसी धार्मिक आलंबन की आवश्यकता रहती है। जिनप्रतिमा के दर्शन, उसकी द्रव्य और भाव पूजा का आलंबन बता दिया जाय तो वे दो घड़ी पर्यंत अनर्थदंड से बचकर संवरभावरूप धर्म को प्राप्त कर सकते हैं। यदि जिनप्रतिमा के आलंबन को उठा दिया जाय तो जिनाज्ञा और धर्मान्तरायरूप कर्म बंध होता है।

यदि जिनपूजा में हिंसा मानी जायगी तो एक गाँव से दूसर गाँव साधु साध्वी को वंदन करने जाना, दया पालना यानि दया के बहाने स्थानक में बैठकर अभक्ष्य लड्डु, पेडा, दही-वड़ा आदि खाना, तपस्या और दीक्षा उत्सव करना इत्यादि सभी कार्यों में हिंसा होती है, इसलिये ये सभी कार्य हिंसा के होने से छोडने योग्य होंगे। जो कहा जाय कि उक्त कार्यों में धर्मभावना बढ़ती है और उससे धर्मलाभ होता है जिससे कि उक्त कार्यों के करने में होनेवाली अल्पहिंसा का पाप नष्ट हो जाता है। तो इसी प्रकार जिनप्रतिमा के दर्शन पूजन से धार्मिक भावना बढ़ती है और उससे धर्मलाभ होने से पूजा में होनेवाली अल्पहिंसा जनक पापकर्म का समूल नाश होता है ऐसा मानना युक्ति-युक्त और शास्त्रानुसार ही है। अब रहा साधुविषयक प्रमाण, सो भगवतिसूत्र के बीसवें शतक के नौवें उद्देशा में लिखा है कि—

यह तो निर्विवाद सही है परन्तु विद्याचारणमुनि उसकी आलो-यणा क्यों करते है ?

उत्तर—सूत्रकारों की आज्ञा है कि साधुओं को महान् कारणों की उपस्थिति हुए विना लब्धि फोडना नहीं चाहिये। शाश्वत अशाश्वत चैत्यों को वदन करने के लिये लब्धि फोड़ना यह कोई महान् कारण नहीं है। अतएव विद्याचारणमुनि को विना कारण लब्धि फोडनेरूप प्रमादाचरण की आलोयणा लेनी पड़ती है, परन्तु शाश्वत अशाश्वत चैत्यों के वदन की आलोयणा नहीं है।

प्रश्न—प्रतिमा अजीव है उसमें गुणठाणा भी नहीं है तो उसकी सेवा से क्या फल हो सकता है ?

उत्तर—ओघा, मुहपत्ति, आदि साधु उपकरण अजीव हैं पर उनके धारण किये विना साधु नहीं समझा जाता, कागज पर स्याही से लिखा हुआ ज्ञान अजीव है पर उसके पढ लेने से मनुष्य ससार में विद्वान् और पूज्य माना जाता है, कागज के लिखित चोपडे अजीव हैं पर उनसे हजारो रुपयो का लेण देण सवधी व्यवहार चलता है, आगम अजीव हैं पर उनसे ज्ञान द्वारा मोक्ष मिलता है और 'नमो अरिहन्ताण' यह पद अजीव है पर उसके जाप से उभय लोक में परम सुख प्राप्त होता है और उक्त वस्तुओं में गुणठाणा भी नहीं है, तो भी वे फल दायक अवश्य मानी जाती है। इसी तरह प्रतिमा अजीव होने पर भी उसकी पूजा ओर वदना भगवान् के नाम तथा गुणों को स्मरण कराने वाली है, और जिनेश्वरो के

नामगोत्र स्मरण का तीर्थंकरगोत्र बन्ध रूप फल प्राप्त होता है, इसलिये जिनप्रतिमा सेव्य ही है। प्रतिमा में सिद्धजीवों के समान तद्गुणों का आरोप कर लेने से गुणठाणा आदि की कल्पना करना व्यर्थ है।

प्रश्न—प्रतिमा को प्रतिमा कहना चाहिये, परन्तु उसको आदिनाथ आदि नाम से संबोधित नहीं करना चाहिये ?

उत्तर—स्थानांगसूत्र में स्थापनासत्य को सत्य कहा गया है और रायपसेणीसूत्र में प्रतिमा को 'धूवं दाउण जिण वराण' इस पाठ से जिनवर कहा गया है। अतएव शास्त्रीय कथनानुसार प्रतिमा को श्रीऋषभदेवजी, अजितनाथजी आदि नामों से संबोधित करने में किसी तरह की हरकत नहीं है। क्योंकि जिसकी प्रतिमा हो उसको उसके नाम से कहने में सत्य ही माना गया है।

६२ स्थानकवासियों के मान्य सूत्र—

ग्यारह अंग ११, बारह उपांग २३, निशीथ २४, बृहत्कल्प २५, व्यवहार २६, दशाश्रुतस्कंध २७, अनुयोगद्वार २८, नंदी २९, उत्तराध्ययन ३०, दशवैकालिक ३१, आवश्यक ३२, इन सूत्रों में भी जिनप्रतिमा की पूजा का विधान है, लेकिन स्थानकपन्थी लोग उसको हठाग्रह के कारण नहीं मानते, इसलिये बत्तीस सूत्र भी स्थानकवासियों के कहने मात्र के लिये मान्य हैं।

६५ देवस्तुतिविषयक—विचार—

सावद्य त्यागरूप सामायिक, प्रतिक्रमण, और पौषध जो भावानुष्ठान की क्रिया है, उसमें अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु इन पच परमेष्ठि के सिवाय अविरति अप्रत्याख्यानी देवी देवो की आराधना स्तुति नहीं करना चाहिये क्योंकि देवी देवों की आराधना से दोष लगता है।

प्रश्न—विघ्ननिवारण के वास्ते अन्य देवों की स्तुति, कायोत्सर्ग किया जाय तो क्या हर्ज है?

उत्तर—जिनेश्वरो का निरासी धर्म है और उनकी प्ररूपित क्रियाएँ (सामायिकादि) कर्मरूप विघ्नों को नाश करने वाली हैं तो उन क्रिया में स्थिर रहने से इस लोक सबधी विघ्न दूर होवें इसमें कौन आश्चर्य है? विघ्ननिवारण में समर्थ सामायिक आदि क्रियाओं में सदेह होने पर दूसरे विषय-विकारी देवों की सहाय चाहनी पडती है। इस लिये सामायिक आदि क्रिया में विघ्ननिवारण सामर्थ्य नहीं है? इस प्रकार के सदेह से समकित का नाश होता है, यही दर्जा बडा भारी है।

सामायिकादि में स्थित श्रावक यदि हडकया कुत्ता, साप, बिच्छु आदि के आने पर किसी को कहे कि ये जन्तु धर्म में विघ्न डालते हैं इसलिये इनको यहा से भगा दो, इनको पीटो, ऐसा कहने से उसकी सामायिक खडित हुई या नहीं? यदि कहा जाय कि सामायिक खडित हो गई तो भला! इतना

कहने मात्र से ही सामायिक का भग (नाश) होता है तो सामायिक आदि निर्वद्य क्रिया में 'अक्षीणकोशकोष्ठागारानरपतयश्च भवन्तु' 'श्रीजनपदाना शान्तिर्भवतु, श्रीराजाधिपाना शान्तिर्भवतु, श्रीराजसन्निवेशाना शान्तिर्भवतु' 'दुष्टग्रहभूतपिशाचशाकिनीना प्रमथनाय''राक्षसरिपुगणमारीचौरेतिश्वापदादिभ्य" इत्यादि क्लिष्ट अध्यवसाय जनक सावद्य-वचनरूप वाक्यों के बोलने स सामायिकादि भावानुष्ठान का भग क्यो नहीं होगा? अवश्य ही होगा। वस इससे अधिक क्या इजा वताया जाय।

प्रश्न—यदि ऐसा ही है तो पूर्वाचार्योंने देवो की आराधना का निषेध क्यो नहीं किया?

उत्तर—भगवतिसूत्र में कहा गया है कि तुंगिया नगरी के श्रावक धर्म में इतने मजबूत है कि उनको कोई भी देवी देव चाहे कितनी भी तकलीफ देवे पर वे अरिहत भगवान् के सिवाय किसी अन्यदेव की सहाय स्वप्न में भी नहीं चाहते। उपासकदशाङ्गसूत्र में लिखा है कि आणंद, कामदेव, आदिने भगवान के पास सम्यक्त्व उचरते समय अरिहत और अरिहतकी प्रतिमा की पर्युपासना के सिवाय अन्यदेवो के वदनादि का त्याग किया। इस कथन से समकितवत श्रावको के लिये विषय विकारी देवी देवो की आराधना का निषेध स्वतः सिद्ध है।

इसके अलावा आगमिक 'गच्छ, अचलगच्छ, पायचद,

गच्छ आदि गच्छों के विद्वान पूर्वकालीन आचार्योंने भी देवों की आराधना का निषेध किया था, लेकिन देवों के उपासक शिथिलाचारी स्वार्थी लोगोंने हठाग्रह से उस शास्त्रीय-निषेध को मान्य नहीं किया।

प्रश्न—आवश्यकनिर्युक्ति, ललितविस्तरा और वन्दारुवृत्ति आदि ग्रन्थों में प्रतिक्रमण में क्षेत्रदेवी का कायोत्सर्ग करना क्यों कहा गया ?

उत्तर—क्षेत्रदेवी का कायोत्सर्ग पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण में साधुओं के लिये कहा गया है जो आज्ञा के निमित्त किया जाता है, प्रार्थनारूप नहीं। क्यों कि साधुओं को एक गाँव से दूसरे गाँव जाते हुए रास्ते में बैठने, या तृण डगल की जरूरत पड़ने और बहिर्भूमि जाने की जगह पर 'अणुजाणह जस्स गो' कहना चाहिये और उठते समय तीनवार 'वोसिरइ' कहना चाहिये यदि न कहे तो चोरी लगती है, जिससे अदत्तादानविरमण महाव्रत का भंग होता है। वैसा कहने में किसी वक्त भूल हो जाय तो उसके निमित्त एक लोगस्स का कायोत्सर्ग पाक्षिक आदि में कर लेना चाहिये परन्तु यह कायोत्सर्ग श्रावकों को करने के सूत्रकारों की आज्ञा नहीं है।

पिछले आचार्यों में से कितने एक आचार्योंने अपने रचित ग्रन्थों में प्रतिक्रमणविधि के साथ श्रुतदेवी और क्षेत्रदेवी का कायोत्सर्ग तथा उनकी स्तुतियाँ श्रावकों के लिये भी

लिख दी हैं। परन्तु यह बात जैनागमो से विरुद्ध है, इससे प्रमाण करने लायक नहीं है। श्रावकप्रतिक्रमणविधि के जो पचाशकादि प्राचीन ग्रन्थ है उनमें श्रुत क्षेत्रदेवी का काउस्सग्ग और थुई दोनो नहीं है।

प्रश्न—देवों की चोथी थुई तो प्राचीन परपरा से चली आ रही है, अगर खोटी होती तो उसकी आचरणा बडे बडे गीतार्थ क्यो चलाते ?

उत्तर—बडे बडे प्रामाणिक आचार्यों मे से हरिभद्राचार्य कृत पचाशकजी की अभयदेवसूरिजी रचित टीका में लिखा है कि ' चतुर्थस्तुति. किलार्वाचीनेति ' याने चोथी थुई निश्चय से नवीन है। और आवश्यकसूत्रदीपिका में देवस्तुति किसी सूत्र में नहीं है ऐसा कहा है। इन दोनो शास्त्रीय कथन से चौथी थुई की प्राचीनता सिद्ध नहीं होती, अतएव चोथी थुई परपरा से नहीं, किन्तु पीछे से चलाई गई है। इस खोटी आचरणा को भावानुष्ठान मे शठ गीतार्थो के सिवाय आगमविहारी-गीतार्थ मजूर नहीं कर सकते। कहा भी है कि—

सर्वज्ञभाषित आगमो से विरुद्ध आचरणा करने वाला और उसके मुताबिक चलने वाला, ये दोनों अनन्त ससार मे घूमने वाले है। अत कपोलकल्पित आचरणा का त्याग करना ही अच्छा है।

प्रश्न—गौतम आदि गणधरोने श्रुतदेवी को नमस्कार

किया है, अगर यह ठीक नहीं होती तो उसको गणधर क्यों नमस्कार करते ?

उत्तर—भगवतिसूत्र के प्रारंभ में 'नमो सुयदेवयाए' गणधरोंने ऐसा जो लिखा है, उसका टीकाकारोंने खुलासा कर दिया है कि श्रुत=द्वादशांगी, उसकी अधिष्ठाता देवी=जिनवाणी। अर्थात् जिनेश्वरों के मुखारविंद से निकली हुई द्वादशांगवाणी रूप श्रुतदेवी को गणधरोंने नमस्कार किया है,, पर व्यन्तरविशेष देवी को नहीं। भला! जिन गणधरो के चरणयुगल में चारों निकाय के देवी देव अपना शिर नमा कर नमस्कार करते हैं। वही गणधर व्यन्तरविशेष देवी (श्रुतदेवी) को नमस्कार करें यह कैसे कहा जा सकता है? कदापि नहीं। अतएव श्रुतदेवी जो व्यंतरविशेष (सरस्वति) है उसको गणधरोंने नमस्कार नहीं किया, किन्तु जिनवाणी को ही नमस्कार किया है।

९६ पीतवस्त्रविषयक—विचार—

वर्त्तमान समय में भगवान् महावीरस्वामी का शासन है जो पांचवा आरा के छेडा तक कायम रहेगा उसमें विचरनेवाले जैनसाधु साध्वियो के लिये श्वेत, मानोपेत, जीर्णप्राय इन तीन विशेषण युक्त वस्त्र रखने की आज्ञा है, परतु पीले, काथिये, केशरिया आदि वर्ण के वस्त्र रखने की आज्ञा बिलकुल नहीं है।

प्रश्न—यह बात तो सही है, परन्तु सफेद कपडे धारक

यति ढीले पड गये तब उनसे जुदी असली साधु की पहचान के वास्ते पीले आदि वर्ण के वस्त्र रक्खे गये हैं सो खोटे कैसे कहे जायँ ?

उत्तर—यतियो की शिथिलता का वहाना लेकर असली साधुवेश को वदल देने के लिये प्राचीन अर्वाचीन किसी जैन शास्त्र में आज्ञा नहीं दी गई। अतएव शास्त्रविरुद्ध कल्पित वेश को खोटा कहने में किसी तरह की हरकत नहीं है। अगर शिथिलता को कारण मान कर वस्त्र वदल दिया जाय तो आधुनिक पीले वस्त्र धारक साधुओ में भी यतियो की अपेक्षा अधिक शिथिलता है या होगी, तब क्या नीला वेश किया जायगा ? इस प्रकार की आचरणा से भगवान् के मार्ग में वेप की विपरीतता हो जायगी और आखिर जैनसाधुओ को भी मिथ्या वेश वालों की गणना में आना पडेगा। इसलिये शास्त्रो से विरुद्ध साधुवेश प्रमाण नहीं है।

यथाप्राप्त श्वेत वस्त्रो के धो लेने की आज्ञा शास्त्रकारोंने दी है परन्तु उनको रगने की आज्ञा शास्त्रों में नहीं दी और शास्त्रोक्त कारणो में का वर्त्तमान में कोई कारण भी नहीं है अतः वस्त्रो का रगना या रगीन वस्त्रो का रखना जिनाज्ञा भग दोप का कारण है, इससे यह आचरणा विलकुल खोटी ही है।

६७ पचमारक में भी चारित्र है—

भगवतीसूत्र के वीसवें शतक में लिखा है कि भगवान् प्रभु महावीरस्वामी का शासन इकीस हजार वर्ष तक चलेगा और

चतुर्विध संघ के बिना शासन का चलना कठिन है। इसलिये वीरप्रभु के शासन तक चारित्र भी कायम रहेगा, अर्थात् सामायिक और छेदोपस्थापनीय ये दो चारित्र रहेंगे। श्री कल्पसूत्रकी किरणावली नामक टीका में लिखा है कि—

केचित्, अतिचारबाहुल्याद् दु:षमायां चारित्रमेव न मन्यते तदपि असमंजसमेव ' न विणा तित्थं निग्गंथेहिं त्ति ' प्रवचना निर्ग्रंथैर्विना तीर्थस्यैवासंभवात्, व्यवहार भाष्ये त्वेवंविधवदत्प्रमाणमत प्रायश्चित्तस्यैवोक्तत्वात् तथा—

जो भणइ नत्थि धम्मो, न य सामाइयं न चेव वयाइं।
सो समणसंघवज्झो, कायव्वो समणसंघेण ॥ ९ ॥

कईएक शिथिलता के सबब पांचवें आरे में चारित्र नहीं मानते सो अनुचित है, क्योंकि साधुओं के बिना शासन का होना असंभव है। व्यवहारभाष्य में पंचमारक में चारित्र नहीं ऐसा कहनेवाले को प्रायश्चित्ती कहा गया है। तथा जो ऐसा कहता है कि नहीं धर्म है, नहीं सामायिक है और व्रत पच-क्खाण भी नहीं है, उसको संघ बाहर कर देना चाहिये। ऐसे मनुष्य को संघ में रखने से बिगाड होता है और दूसरों की श्रद्धा बिगडती है।

९८ तिथिनिर्णय-विचार—

चौदश दो होवें तो तेरस दो करना अर्थात् पहली चौदस को तेरस और दूसरी चौदस को पक्खी करना चाहिये। इसी तरह अमावास्या या पूर्णिमा दो होवें तो पहेली अमावास्या

या पूर्णिमा को चौदस और दूसरी अमावास्या या पूर्णिमा करना चाहिये । चौदस, अमावस और पूर्णिमा इनमें कोई क्षय हो जाय तो तेरस का क्षय करना । क्योंकि 'क्षये तिथि पूर्वा ग्राह्या, वृद्धौ च तथोत्तरा' तिथि क्षय होने पर पिछली तिथी और बढ़ने पर दूसरी तिथी ग्रहण करना चाहिये । यह हीरप्रश्नकार का न्याय है।

६९ तेरापंथियों की दया पर विचार—

हरएक जीव को बचाना यह सर्वमान्य धर्म है । जैन शास्त्रकारों का तो खास सिद्धान्त ही है कि जैनधर्म दयामूलक है। इसलिये प्राणिमात्र को आत्म-समान समझो सभी जीव जीने की आशा रखते हैं उनकी हमेशा सुरक्षा करना यही वास्तविक धर्म है । जिसके हृदय में करुणा नहीं है, जो जीवों को दुःखी देख कर हृदयार्द्र नहीं होता वह धर्म के योग्य नहीं है और न उसे सद्गति कभी प्राप्त होती है । संसार के सभी दर्शनकारोंने जीवदया को परम धर्म बतलाया है और अहिंसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांच बातों को मुख्य मानी हैं। इससे संसार के सभी धर्मों की पक्की नींव केवल जीवदया पर ही निर्भर है ऐसा निर्विवाद सिद्ध है ।

प्रश्न—जीव को मारने में एक पाप और उसको बचाने में अठारह पाप लगते हैं क्यों कि असंजति की अनुकंपा लाना ठीक नहीं है ?

मात्र को इस मजहबवाले बत्तीस सूत्र मानते हैं, परन्तु उनमें लिखी हुई एक भी आज्ञा का पालन नहीं करते। इसके नियता साधुओं का आचार बाहर से दिखाने का दूसरा और भीतरी व्यवहार (रंग-ढंग) विचित्र प्रकार का ही रहता है, ये दोनों बातें इनकी शास्त्रीय नहीं, कल्पित रहती हैं। ये लोग स्थानकवासीयों के समान बल्कि, उनसे भी अधिक जिनप्रतिमा और उसकी पूजा के कट्टर द्वेषी होते हैं और बिना शिर पैर के अंड बंड प्रश्न किया करते हैं।

१०० तेरापन्थियों की उत्पत्ति—

विक्रम सवत् १८०८ में स्थानकवासीयों के पूज्य रुघनाथजी मारवाड में विचरते थे। उनके पास सोजत बगडी के समीपवर्त्ती कण्टालिया गाँव-निवासी भिखुनजी नामक ओसवालने दीक्षा ली। गाँव मेड़ता में रुघनाथजी भिखुनजी को भगवतिसूत्र का टब्बा पढ़ाने लगे। उसको पढ़ते पढ़ते ही भिखुनजी की विचारशक्ति में कई तरह की विपरीतता उभड़ने लगी। इससे सामतमल धारीवाल महाजनने रुघनाथजी को कहा कि भिखुनजी को पढ़ाना ठीक नहीं। क्योंकि इसके हृदय में 'पय पान भुजङ्गाना, केवल विषवर्द्धनम्' की उक्ति के समान सूत्र-रहस्य भासमान होता है, आगे जाकर यह उत्सूत्र प्ररूपणा करेगा। रुघनाथजीने कहा—पहले भी महावीर प्रभुने गोशाले को बचाया और जमाली को पढ़ाया है, वे पीछे से निह्नव हो गये तो इसका भी कर्मानुसार जो होनहार होगा सो हो जायगा। ऐसा कहके भिखुनजी को भगवतिसूत्र तो पूरा

पढा दिया; परन्तु आगे सूत्र पढाना बंद कर दिया। भिखुनजीने भगवतिसूत्र की प्रति लेकर रुगनाथजी से जुदा विहार किया। उस समय रुगनाथजीने भगवतिसूत्र की प्रति छोड कर जाने का कहा, पर भिखुनजीने उनकी एक भी बात न सुन कर कूच कर ही दिया। पीछे से रुगनाथजीने अपने दो शिष्यों को भेज कर भगवतिसूत्र की प्रति भिखुनजी से जबरदस्ती मंगवा ली। बस इसीसे भिखुनजीने मारे क्रोध के ठान लिया कि—मै भी नया मत निकालु और रघनाथजी को तक्लीफ पहुचाऊ।

भिखुनजीने मेडता से निकल कर मेवाड के राजनगर में आकर चोमासा ठाया। यहा सागरगच्छ के यति का भडार था, उसमें से भिखुनजी को पुस्तकें वाचने को मिलने लगी। लेकिन बिना गुरुगम के अपने आप टब्बा–टब्बी वाचने के सबब भिखुनजी के मलिन हृदय में वैपरीत्य पैदा हो गया। इससे भिखुनजीने जैनागमों से विरुद्ध दया का ही निषेध किया जो कि जिनशासन का खास मत्र या उद्देश्य है, भिखुनजीने सब से पहले उसीका गला घोट डाला और भिखुनजी जयमलजी का शिष्य वखताजी ये दो साधु तथा गच्छराज ओसवाल, व लालाजी पोरवाल ये दो गृहस्थ एव चारोने परस्पर सम्मत हो कर यह मतव्य स्थिर किया कि—

“ साधु मुनिराज किसी त्रस–स्थावर जीव को हणे नहीं हणावे नहीं और हणनेवाले की अनुमोदना करे नहीं। किसीने

किसी जीव को बाधा हो, तो साधु छोडे नहीं, छुडावे नहीं और छोडने छुडानेवालों को अच्छा जाने नहीं यह साधुका आचार है।

इसी तरह श्रावक भगवान के छोटे पुत्र हैं, इसलिये वे भी कोई किसी को मारता हो, तो उसको छोडे नहीं, छोडावे नहीं, और छोडानेवाले को अच्छा जाने नहीं। इसमें कारण यह बताया कि-यदि कोई प्राणी किसी जीव को मारता हो उसको छोडाने में प्रथम तो अन्तराय दोष लगेगा और छोडाने बाद वह जीव हिंसा करेगा, मैथुन सेवेगा, फल-फूल पत्र आदि खावेगा उसका सभी पाप छोडानेवाले को लगेगा।

इसी प्रकार किसी वाडे में गौ, बैल, भैंस आदि पशु भरे हो और उसके पास अग्नी लगी हो, तो उस वाडे का दरवाजा खोल कर उन पशुओं को नहीं निकालना चाहिये। क्योंकि उनको निकालेंगे, तो वे मैथुन सेवेंगे, हिंसा करेंगे वह सभी पाप दरवाजा खोलकर निकालने वाले को लगेंगे।"

बस, यह मतव्य स्थिर करके चौमासा खतम होने बाद भिखुनजी अपने गुरु रुघनाथजी के पास सोजत आये। रुघनाथजी को पहले से ही मालूम हो चुका था कि इसने खोटा मतव्य स्थिर करके लोगों की श्रद्धा बिगाडने की तजवीज की है अतएव रुघनाथजीने भिखुनजी को आदर भी नहीं दिया और न आहार मडली मे बैठाया। भिखुनजीने कहा-स्वामिन्! मेरा क्या अपराध हुआ, जिससे मेरे साथ ऐसा बरताव किया जा रहा है ? रुघनाथजीने कहा-तुम्हारी श्रद्धा बिगडी हुई है

तुमने धर्म के अगभूत दया और दान दोनों का निषेध किया सो जैनसूत्रों से विरुद्ध है। यदि दया दान उठा दिया जायगा तो मोक्षमार्ग का ही अभाव हो जायगा। जब तक तुम खोटे मतव्य को छोड कर प्रायश्चित्त नहीं ले लोगे तब तक तुम आदर और शामिल आहार पानी करने योग्य नहीं हो सकते।

इस कथन को सुनकर भिखुनजीने मन ही मन सोचा कि यदि मैं अभी हठाग्रह में पड़ूगा तो मेरा ढाचा किसी तरह नहीं जम सकेगा, इसलिए इस समय तो गुरुजी की हा में हा मिला लेना ही अच्छा है। ऐसा विचार के कहा कि स्वामिन्! आप मेरे उपकारी हैं, आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, आप जो उचित समझें वह प्रायश्चित्त दें, मैं लेने को तैयार हू और अपराध की क्षमा चाहता हू।

रुघनाथजीने भिखुनजी को छः मासी प्रायश्चित्त दिया और कहा कि–बगडी में जयमलजी का चेला वखताजी तुम्हारा चेला भारमल और महाजन वच्छराज ओसवाल व लालजी पोरवाल इन चारों की तुमने श्रद्धा खराब की है। इस लिये उनकी श्रद्धा पीछी ठीक करो, वे तुम्हारे समझाये विना ठिकाने नहीं आ सकते। भिखुनजी गुरु आज्ञा से बगडी गये और उन लोगों को समझाने लगे। उसके पहले ही वखताजी आदिने भिखुनजी को उलटा ओलभा देकर चक्कर में फँसा लिया। यह तो उस वाली बात हुई कि 'लेने गई पूत और खो आई खसम।' आखिर भिखुनजी को जो चाहते थे उसी लकीर का फकीर होना पडा।

इधर रुघनाथजी और उनके गुरु-भाइ जयमलजी के परस्पर किसी कारण से अनवनाव हो गया, उसे मिटाने के लिये छ महिना तक प्रपंच हुआ, लेकिन उनके आपसी मेल जोल नहीं हुआ। इस फूट में भिखुनजी का काम बन गया, उनने अपने अनुयायियो के सहाय से कुछ साधु और श्रावकों को अपने चगुल मे फँसा लिये।

बाद में रुघनाथजीने भिखुनजी को अनेक हेतु और युक्तियो से खूब समझाया और प्रायश्चित्त लेकर शामिल हो जाने को बहुत कहा। लेकिन अब भिखुनजी किसकी मान सकते थे? उनने रुघनाथजी को साफ जवाब दे दिया कि हम लोगो का जो मतव्य है वही ठीक है, आपका कहना ठीक नहीं है। तब रुघनाथजी ने 'बिगडा पान बिगाडे चोली, बिगडा साधु बिगाड़े टोली।' ऐसा विचार के सवत् १८१५ चैत्र सुदि ६ शुक्रवार के दिन भिखुनजी को समुदाय से बाहर निकाल दिया। किसी किसी प्रति मे स० १८१८में बाहर किया लिखा है।

बस, जब भिखुनजी समुदाय से बाहर किये गये तब उनके पक्ष में वखनाजी, रूपचदजी, भारमलजी, गिरधरजी आदि बारह साधु और भी आ गये। इससे भिखुनजीने अपने मजहब का नाम 'तेरापन्थ' कायम किया और अपनी मनःकल्पना से नीचे लिखे मतव्यो की निडररूप से जोरों के साथ प्ररूपणा शुरु की।

दया के विषय में—

१–भूखे–प्यासे को जिमाने में, कबूतर आदि जीवों को धान्यकण डालने में, पानी की पो बैठाने में और दानशाला माडने में एकान्त पाप लगता है।

२–बिल्ली ऊंदरों को पकडती हो, कोई हिंसक जीव किसी दुर्बल जीव को मारता हो उसको यदि छुडाया जाय तो भोगान्तराय लगता है।

३–असयति का जीना वाछना, मरते हुवे जीव को शरीर व्यापार से बचाना और मच्छीमारों को मछलियाँ पकडते हुए रोकना इत्यादि में अन्तरायरूप पाप लगता है।

४–जीव को मारनेवाले को एक पाप और उसको बचानेवाले को अठारह पाप लगते है।

५–साधु को कोई दुष्ट फासी दे गया हो, कोई दयावत उस फासी से साधु को बचावे, तो उसको एकान्त पाप लगता है।

६–दु खी जीव को देख करके विचार करना कि 'अहो! यह अपने कर्मसे दु ख देख रहा है, इसके कर्म छूटें तो अच्छा' ऐसी चिंता करने को 'अनुकम्पा' कहते हैं। उस दु खी जीव को भोजन वस्त्र आदि से सुख पहुचाना अनुकपा नहीं, केवल पाप है।

दान के विषय में—

७–तेरापन्थी साधु को छोड कर, दूसरे किसी हीन, दीन, दु खी आदि को आहार, वस्त्र, पात्र, वसति आदि देने से एकान्त पाप लगता है।

८–महावीरस्वामीने असयति–अव्रतियों को वरसीदान दिया इससे उनको बारह वर्ष तक दु ख देखना पडा।

९–तेरापन्थी साधु के सिवाय पुण्य का क्षेत्र कहीं भी नहीं है। श्रावक को भी दान देने मे पाप लगता है।

१०–श्रावक ज़हर के कटोरा समान और कुपात्र है। इसलिये उसको दान देने तथा धर्म क उपकरण देने में बिलकुल धर्म नहीं है।

११–तेरापन्थी पूज्य ही धर्म–नाथ, धर्म–तीर्थंकर और मोक्षदान दाता है, इसलिये उनके अवगुण कभी नहीं देखना और उनके साथ साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका ये चारों हमेशा रहना चाहिये।

तेरापन्थ के उत्पादक भिखुनजी की उक्त मरूपणा बिलकुल उल्टी और अतीत, अनागत, वर्त्तमान, एव तीनों काल के अनन्त तीर्थंकरो की सुन्दर आज्ञाओं की नाश करनेवाली है। ऐसा हम ही नहीं, किंतु सभी मजहबवाले निर्विवाद स्वीकार कर सकते है। क्योंकि ससार के माय. सभी दर्शनकारो (मजहबो) ने दया और दान ये धर्म के दो अग माने हैं। परन्तु तेरापन्थीयोने उन्हीं धर्म के दो अगो का समूल नाश करके अपना ढाचा जमाया है। भिखुनजी के दादे पर दादोने, तो प्रतिमा और प्रतिमा–पूजा को ही लुप्त करके अपने आपको दुर्गति पात्र बनाया था, लेकिन भिखुनजीने तो उसके साथ साथ दया और दान इन दोनो का निषेध करके खुद की

आत्मा को और अपने सहवर्त्ती लोगों को अनन्त संसार में धुवाने का काम किया है। भला! जिस मजहब में दया और दान ये दोनों धर्म के अग नहीं, उस में तप जप और सयम का होना किस प्रकार सभव हो सकता है? कदापि नहीं।

१०१ स्थानकवासियों की उत्पत्ति—

ससार में सत्य सिद्धान्तो का प्रचार १, स्वमान प्रतिष्ठा २, आजिविका ३, अगतद्वेष ४, और हार्दिक–मात्सर्य ५, इन पाच कारणों से मत मतान्तरो की उत्पत्ति होती है। स्थानकवासी (ढूढक) मत उक्त कारणों में से आजीविका और हार्दिक–मात्सर्य इन दो कारणों से पैदा हुआ है। इसका ऐतिहासिक वृत्तान्त इस प्रकार है—

शहर अमदाबाद में लोंका नामक एक लिखारी वनिया रहता था, वह यतियों के यहाँ आगम–ग्रथो की लिखाई की आजीविका करता था। एकदा समय उसने भडार के अधिकारियो की रजा के विना एक प्रति खुद के वास्ते और एक प्रति ज्ञान–भडार के वास्ते लिखना शुरू की और उनमें अपनी मनोमति से पाठो का तथा अर्थों का फेर–फार करना शुरू कर दिया। ज्ञान–भडार के अधिकारियोंने फेरफार की हुई प्रतियों को देख कर लोंका को वहुत ठपका दिया और सभी जगह से वेइमानी करने के कारण लोंका अपमानित हुआ, यहाँ तक कि उसकी लिखाई की आजीविका भी नष्ट–भ्रष्ट हो गई। अतएव लोंका आजिविका का भग हो जाने और द्वेष के कारण अहमदाबाद को छोड कर लींवडी चला गया।

लींबडी आये बाद लोंकाने अपने मन्त्री और राज्य के कारभारी लखमसी नामक बनीये से कहा कि ' भगवन्तो का धर्म लुप्त हो गया है, मैंने अहमदाबाद में लोगों को असली धर्म बताना शुरु किया तो लोगोंने मेरे को मार पीट के निकाल दिया इसमें यदि आप मुझे सहायता दें, तो मैं यहाँ असली धर्म की प्ररूपणा करू। '

लखमसीने कहा कि–आप लींबडी प्रान्त में बेधडक अपने मान्य धर्म की प्ररूपणा करें, आपका खान–पान सम्बन्धी तजवीज मैं कर दूगा ।

तदनन्तर लोंकाने लखमसी के आश्रय में रहकर अन्दाजन छाईस वर्ष तक अपने मान्य सिद्धान्तो की प्ररूपणा की। परन्तु किसीने उसको मान्य नहीं की। आखिर तनतोड परिश्रम होने बाद लोंका का असदुपदेश भूणा नामक किसी बनियेने स्वीकार किया और लोंका के कहने से भूणाने सम्वत् १५३४ में बिना गुरु के अपने आप कल्पित साधु–वेश धारण किया। ठीक ही है कि जो दुर्गति में जानेवाला होता है उसको साथ देनेवाला दुर्गति–पात्र भी कोई मिल ही जाता है।

लोंका–लिखारीने अहमदाबाद में ज्ञान–भंडार के अधिकारियों से बिना पूछे, छाने जो इकतीस सूत्र लिख रक्खे थे वे सभी टब्बार्थ (जूनी गुजराती भाषा में) थे, भूणा को वही टब्बावाले सूत्र पढाये और अपने लोंकामत की नींव डाली। लोंका के पास पढकर भूणाने गावो गाँव विचरना शुरू किया

ौर कई भद्रप्रकृतिक लोगों को अपने चगुल में फँसाये।
मश भूणा के रूपजी नाम का शिष्य हुआ। उसके नरसिंह,
सके जशवन्त और उसके वजरग नामक शिष्य हुआ। बस,
ोंकामत का यही आचार्य कहलाया। यति वजरगजी के
ास सूरत-निवासी वोहरा वीरजी की पुत्री फुलबाई के गो"-
त लवजीने सवत् १७०७ में दीक्षा ली। किसी समय
लवजीने दशवैकालिक का भाषारूप अर्थ पढ़ते हुए अपने गुरु
ो कहा कि इस सूत्र को देखते तो आपके आचार-विचार
बिलकुल भ्रष्ट हैं, आप जैसे क्रिया-हीन गुरु को मानने से
ुछ भी फायदा नहीं है। इस प्रकारके उलट वाक्यों से वजर-
ीने लवजी को समुदाय से बाहर निकाल दिया।

लवजीने थोभण रिख-सखीयोजी को अपने पक्ष में लेकर
वत् १७०६ (किसी प्रति के अनुसार सवत् १७११) में
ोंका के मान्य वेश से भी उल्टा कल्पित स्वाग (वेश)
ारण किया और लुपक-मत की नींव डाली। लवजीने
ोलो के समान गाती बाँधना १, दिनरात मुहपर पट्टी बाँधे
रखना २, लवा ओघा रखना ३, पैरो की एड़ी तक लवा
ोलपट्ट पहनना ४, धोवन का ही जल पीना ५, जिनप्रतिमा
जिनमन्दिर और उसकी सेवाभक्ति में धर्म नहीं मानना ६,
त्यादि जैनागमो से विरुद्ध अपने मन्तव्य स्थिर किये।

लोंका के मान्य इकतीस सूत्रों को लवजीने भी मान्य
रक्खे, परन्तु एक कल्पित उन ३१

सूत्रों में एक सख्या और भी बढ़ा दी। इक्तीस सूत्रों में भी जहाँ जहाँ जिनप्रतिमा के अधिकार थे उनको लवजीने कहीं तो निकाल दिये और कहीं मन कल्पित अर्थ लिख दिये। बस लवजी का सस्थापित लुपक-मत ही स्थानकवासी या ढूढक मत कहाता है। दर असल में यह मत लोकामत की शाखा है, इससे इस मत का मूल उत्पादक लोंका नामका गृहस्थ ही समझना चाहिये। इसी कारण से ढूढक साधुओं की भाषा और आचार-विचारादि प्रणाली में गृहस्थ-भाषा अधिक झलकती देख पड़ती है।

वार्त्तमानिक-स्थानक वासियोंमें छ कोटी, आठ कोटी, नौ कोटी, श्रावकसूत्री, साधुसूत्री, जीवपथी, अजीवपन्थी, अणाकी व्रतवाले, नोपाखिवाले, पजाबी, गुजराती मारवाडी आदि कई फाटे पड चुके हैं और इनमें थोड़ी थोड़ी बातों का फरक होने पर भी परस्पर अनबनाव होता रहता है।

स्थानकवासी लोग अन्य मजहब के मिथ्यादृष्टि भैरू, भूत, भवानी, शीतला, गोगा, क्षेत्रपाल आदि देवी देवों की उपासना करने में पाप नहीं समझते। परन्तु जिनमन्दिर बनवाने, जिन प्रतिमा की पूजा करने और तीर्थयात्रा जाने आदि में पाप मानते हैं और एतद्विषयक जब तब नाना कुतर्क किया करते हैं। इन लोगों की कितनीएक कुतर्कों का खडन प्रश्नोत्तररूप से इसी ग्रन्थ के बोल नबर ६२ में किया जा चुका है।

१०२ पीताम्बर–जैनो की उत्पत्ति––

तपागच्छाचार्य–श्री विजयप्रभसूरीश्वरजी महाराजने न्याय विशारद न्यायाचार्य श्रीयशोविजयजी को **महामहोपाध्याय** पद्वी दी, तब उस पद्वी को लेने के लिये सिंहसूरिजी के शिष्य सत्यविजयजी पन्यास की भी इच्छा हुई। परन्तु आचार्यने अयोग्य समझ कर उनको महामहोपाध्याय पद्वी नहीं दी।

इसी मत्सरता के कारण सत्यविजयजी पन्यासने पाच दश साधुओ को अपने पक्ष में ले करके विक्रम सवत् १७०५ मे गलियाम्बर वस्त्र धारण करने का पन्थ चलाया। बाद में सत्यविजयजी पन्यास के शिष्य कर्पूरविजयजीने आहार, वस्त्र आदि की दुर्लभता से गलियाम्बर वस्त्र को छोड कर काथियागग के वस्त्र धारण किये। फिर 'अन्धस्येवान्धलग्नस्य, विनिपात पदे पदे।' अथवा 'बडा ऊट आगे भया, पीछे भई कतार। सभी डूबारे बापडा, बड़े ऊंट की लार।' आदि लोकोक्तियों के अनुसार शोभादेवी के उपासको (भक्तो) ने गलियाम्बर ओर काथियाम्बर इन दोनो को छोड कर केशरिया (पीले) वस्त्र रखना शुरू किये और कितनेएक भवाभिनन्दी–लोग उस चगुल में भरती हो कर दुर्गति के पात्र बने।

दर असल में इस पन्थ के सस्थापक सत्यविजयजी

पन्यासने उक्त पन्थ निकाल करके तीर्थंकर, गणधर, पूर्वधर और बहुश्रुत आदि महर्षियों की आज्ञा का उल्लंघन किया है। क्योंकि श्रीआचाराग, सूत्रकृताग, स्थानाग, भगवति आदि जैनागमो (सूत्रों) में महावीर शासनानुयायी साधु साध्वियों के लिये श्वेत, मानोपेत वस्त्र रखना कहा है, परन्तु उनको रंगने की या रंगे हुए वस्त्र रखने की आज्ञा नहीं दी। अतएव पीतवस्त्र रखने का पन्थ शास्त्रविरुद्ध है और शास्त्रविरुद्ध पन्थ में रहने से अनन्त ससारचक्र में घूमना ही पडता है।

१०३ बारहसूत्रों की निर्युक्तियाँ —

नाम	श्लोक	नाम	श्लोक
१ आचाराङ्ग-निर्युक्ति	४५०	७ व्यवहार-निर्युक्ति	०
२ सूत्रकृताङ्ग- ,,	२६५	८ दशाश्रुतस्कध ,,	१८०
३ आवश्यक- ,,	३१००	९ कल्पसूत्र-निर्युक्ति	१५
४ दशवैकालिक ,,	५५०	१० पिंडनिर्युक्ति	८३५
५ उत्तराध्ययन ,,	७००	११ ओघनिर्युक्ति	१३५५
६ बृहत्कल्प- ,,	६२५	१२ ससक्तनिर्युक्ति	८०

इनके अलावा सूर्यप्रज्ञप्ति-निर्युक्ति और ऋषिभाषित निर्युक्ति भी है, परन्तु वर्तमान में ये अलभ्य हैं। इन निर्युक्तियों के कर्ता चौदहपूर्वधारी श्रुतकेवली भगवान् श्रीभद्रबाहु स्वामीजी

हैं, जो वीर-निर्वाण से १७० वर्ष बाद स्वर्गवासी हुए हैं।

१०४ अन्यमतिमान्य-स्नानसप्तक—

१ आग्नेय-भस्मी लगाना, २ वारुण-जल से नहाना, ३ ब्राह्म्य-तृष्णा के वेग को रोकना, ४ वायव्य-शरीरपर धूलि लपेटना, ५ दिव्य-आतापना लेना, ६ पार्थिव-शरीर से मिट्टी लगाना, ७ मानस-शास्त्रीय उपायों से चित्त की शुद्धि करना। जैनेतर लोगों के माने हुए शास्त्रों में ये सात प्रकार के स्नान कहे हैं। इनमें ब्राह्म्य, दिव्य और मानस ये तीन स्नान जैनशास्त्र-विधि के अनुसार ग्राह्य और शेष त्याज्य हैं।

१०५ अयोध्या नगरी का प्रमाण गणित—

अयोध्या (विनीता) नगरी का प्रमाण-गणित करने के लिये जैनाचार्यों के तीन तरह के मत हैं। प्रथम पक्षमें-उत्सेधांगुल से चारसौ अंगुल की लंबाई और उसी अंगुलकी पहोलाई का एक प्रमाणांगुल होता है। द्वितीय पक्ष में-चारसौ उत्सेधांगुल की लंबाई को ढाई अंगुल की पहोलाई के साथ गुणा करने से एक प्रमाणांगुल के क्षेत्र-फल में १००० उत्सेधांगुल होते हैं। इस हिसाब से एक हजार उत्सेधांगुल का एक प्रमाणांगुल हुआ। तृतीयपक्षमें-ढाई उत्सेधांगुल का एक प्रमाणांगुल होता है। प्रमाणांगुल के माप से अयोध्यानगरी बारह योजन लंबी और नौ योजन पहोली है।

प्रथम पक्ष से अयोध्या का गणित—

१-उत्सेधांगुल के माप से अयोध्यानगरी ४८०० योजन

लंबी और ३६०० योजन पहोली है। २-अयोध्याके क्षेत्र-फल में एक एक योजन के चोरस-खंड कर तो तेंइ तह-तर लाख अस्सीहजार १७२८०००० होते हैं। ३-लंबाई के कोश १६२०० और पहोलाई के कोश १४४०० होते हैं। ४-अयोध्यानगरी के योजनों के एक एक कोश के चोरस खंड सत्ताईसक्रोड चोसठलाख अस्सीहजार(२७६४८ ०००) होते हैं। ५-अयोध्याकी लंबाई उत्सेधांगुल प्रमाण से तीन-क्रोड, चोरासीलाख (३८४००००००) धनुष की होती है और पहोलाई दो क्रोड, अठ्यासी लाख (२८८०००००) धनुष की होती है। ६-अयोध्या के ४८०० योजनकी लंबाई और ३६०० योजन की पहोलाई में एक एक धनुष के चोरस-खंड एक पद्म, दस नील, उनसाठ खर्व, बीस अब्ज (११०५९२००००००००००००) होते हैं। ७-पाचसों पाचसों धनुष के चोरस-खंड करना हो, तो धनुषिया खंड के ११०५९२००००००००००० इन अंकों में २५०००० (दो लाख पचास हजार) का भाग देने से पचशतिया चोरस खंड चार अब्ज, बियालीस क्रोड, छत्तीस लाख, अस्सी हजार (४४२३६८००००) होते हैं। इस हीसाब से अयोध्यानगरी की बारह योजन की लंबाई में छियतर हजार आठसो (७६८००) धनुष और नौ योजनकी पहोलाई में सत्तावन हजार छ सो (५७६००) धनुष हुए ये पचशतिया एक चोरसखंड की संख्या समझना।

द्वितीय पक्ष में—

१-उत्सेधांगुलमान से अयोध्यानगरी की लंबाई १२०००

और पहोलाई ९००० योजन की होती है। २--क्षेत्रफल (एक एक योजन के चोखखंड की संख्या) दस क्रोड़ अस्सी लाख (१०८००००००) होती है। ३–अयोध्या की लंबाई के कोश ४८००० और पहोलाई के कोश ३६००० होते है। ४-एक एक कोश चोरस खंड का क्षेत्रफल एक अब्ज, सत्ताइस क्रोड़ अस्सी लाख (१७२८००००००) कोश का होता है। ५–अयोध्या की लंबाई के नौ क्रोड़ साठ लाख (९६००००००) और पहोलाई के सात क्रोड़ बीस लाख (७२००००००) धनुष होते है। ६–अयोध्या के योजनों में एक एक धनुष के चोरसखंड (क्षेत्र फल) की संख्या छः पद्म, इक्यानवे नीलम, बीस खर्व (६९१२००-००००००००००) होती है। ७-पाचसौ पाचसौ धनुष के एक एक चोरसखंड की संख्या करना हो, तो ६९१२०००००-००००००००) इस संख्या में दो लाख पचास हजार (२५००००) का भाग देने से सत्ताइस अब्ज, चोसठ क्रोड़, अस्सी लाख (२७६४८००००००) होती है, अर्थात् पाच-सो २ धनुष के खंड (टुकड़े) होते हैं। इस हिसाब से अयोध्यानगरी की बारह योजन की लंबाई में पचशतिया धनुष के चोरस खंड एक लाख बानवे हजार (१९२०००) और नो योजन की पहोलाई में एक लाख चवॉलीस हजार (१४४०००) समझना चाहिये।

तृतीयपक्ष में—

१–उत्सेधांगुल के मान से अयोध्यानगरी

की लबाई और साडे चाईस योजन की पहोलाई होती है। २–क्षेत्रफल, ३० योजन को ७२॥ के साथ गुणा करने से ६७५ योजन का होता है। ३–अयोध्याकी लबाई १२० और पहोलाई ९० कोश की होती है। ४–एकसौ बीस कोस की लबाई को नब्बे कोश की पहोलाई के साथ गुणा करने से दस हजार आठसौ कोश का क्षेत्र फल होता है। ५–अयोध्या की १२ योजन की लबाई में दो लाख चालीस हजार (२४००००) और नौ योजन की पहोलाई में एक लाख अस्सी हजार (१८००००) धनुष होते हैं। ६– दो लाख चालीस हजार की लबाई को एक लाख अस्सी हजार की पहोलाई के साथ गुणा करने से तियालीस अब्ज, बीस क्रोड एक एक धनुष के चोरसखड होते हैं। ७–अयोध्या की क्षेत्र फल सख्या ४३२००००० ००० इस सख्या में २५०००० का भाग देने से एक लाख बहोत्तर हजार आठसौ (१७२८००) पाचसौ पाचसौ धनुष के चोरस खड होते है। इस हिसाब से अयोध्यानगरी के बार योजन की लबाई में पचशतिया चोरस धनुष खड ४८० और नौ योजन की पहोलाई में ३६० खड होते है।

प्रथम पक्ष के मत से पचशतिया धनुष के ४४२३६८०००० इन चोरस खडो में भरतचक्रवर्त्ती की सारी सेना का समावेश हो सकता है। परन्तु गमनाऽऽगमन करने के लिये जगह कम रहती है। इस लिये जैनप्रबोध–प्रथम भाग के " दक्षिण

पोले अयोध्या पूर्वली विनीताथी वसाव्यो. ए विनीता अने अयोध्या बेहुने आठ पहोरमांहे विश्वकर्माए निपजाव्यां " इस कथन से यह अनुमान किया जा सकता है कि अयोध्यानगरी में भरतचक्रवर्त्ती की सेना और विनीता में प्रजावर्ग रहता होगा। इस प्रकार मान लेने से प्रथम पक्ष का मत भी मिल जाता है।

द्वितीय पक्ष के मत से पचशतिया धनुष के खड २७६४८०००००० हैं, इनमें चक्रवर्त्ती की सकुटुम्ब समस्त सेना और प्रजावर्ग केवल अयोध्या नगरी में ही समा सकता है। यहाँ पर भरत ऐरवत क्षेत्रनिवासी–मनुष्यों के आठ वालाग्र की एक लीख, आठ लीख की एक जू, आठ जू का एक यवमध्य और आठ यवमध्य का एक उत्सेधांगुल समझना चाहिये। एक जीर्ण–पत्र से उद्धृत।

१०६ कर्मभूमिक्षेत्र के आर्य अनार्य देश की संख्या—

भरत और ऐरवत क्षेत्र में अलग अलग साढे पच्चीस देश आर्य और इक्तीस हजार नौसौ साढे चुमोतर (३१९७४॥) अनार्य देश है। महाविदेह क्षेत्र में आठसौ सोलह (८१६) आर्य देश और दस लाख, तेइस हजार, एकसौ चोरासी (१०२३१८४) अनार्य देश हैं।

धातकीखंड के दो भरत दो ऐरवत एव चार क्षेत्र में १०२ आर्य देश, और एक लाख सत्ताईस हजार आठसौ अठ्यानवे (१२७८९८) [illegible] है [illegible] दो महाविदेह

क्षेत्र में १६३२ आर्यदेश, तथा तीस लाख, छियालीस हजार, तीनसौ अडसठ (२०४६३६८) अनार्य देश है।

पुष्करार्द्ध के दो भरत दो ऐरवत एव चार क्षेत्र म १०२ आर्य देश और १२७८६८ अनार्य देश हैं। दो महाविदेह क्षेत्र में १६३२ आर्य देश और २०४६०६८ अनार्य देश हैं।

इस प्रकार जम्बूद्वीप में दस लाख अठ्यासी हजार (१०८८०००) देश, धातकीखड में इकीस लाख छियतर हजार (२१७६०००) देश और पुष्करार्द्ध द्वीप में २१७६००० देश है। ढाई द्वीप के सब मिल कर चोपन लाख चालीस हजार (५४४००००) देश समझना चाहिये।

जम्बूद्वीप में ८६७ आर्य देश, और १०८७१३३ अनार्य देश हैं, धातकीखड में १७३४ आर्य देश, और २१७४२६६ अनार्य देश है और पुष्करार्द्ध द्वीप में १७३४ आर्य देश, तथा २१७४२६६ अनार्य देश हैं। इस प्रकार ढाई द्वीप मे ४३३५ आर्य देश और चोपन लाख पेंतीस हजार छ सौ पैंसठ (५४३५६६५) अनार्य देश समझना चाहिये।

जम्बूद्वीप मे २०४, धातकीखड में ४०८ और पुष्करार्द्ध में ४०८ खड है। इनमें से जम्बूद्वीप में ३४, धातकीखड में ६८ और पुष्करार्द्ध में ६८ आर्यखड, और शेष अनार्यखड जानना चाहिये।

जम्बूद्वीप के भरत में एक खड आर्य, पाच खड अनार्य,

एरवत-क्षेत्र में एक खड आर्य, पाच खड अनार्य और महाविदेह म ३२ खड आर्य, तथा १६० खड अनार्य है।

धातकीखड के दो भरत में दो खड आर्य, दस खड अनार्य, दो एरवत क्षेत्र में दो खड आर्य, दस खड अनार्य, दो महाविदेह में ६४ खड आर्य, और ३२० अनार्य खड हैं। इमी प्रकार पुष्कराद्धं में भी समझना।

एतदनुसार ढाई द्वीप मे सब मिलकर एक हजार बीस (१०२०) खड हैं, जिनमें १७० खड आर्य, और ८५० खड अनार्य जानना चाहिये।

१०७ अजीव का ५६० भेद—

अजीव के मूल दो भेद है-रूपी, अरूपी। अरूपी के चार भेद हैं-१ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय और ४ काल। इन चारों के तीस भेद होते है—

धर्मास्तिकाय-खध १, देश २, प्रदेश ३, अधर्मास्तिकाय-खध ४, देश ५, प्रदेश ६, आकाशास्तिकाय-खध ७, देश ८, प्रदेश ९ और काल १०, द्रव्य से धर्मास्तिकाय ११, क्षेत्र से चौदहराजलोक व्यापी १२, काल से अनादि अनन्त १३, भाव से अवर्ण अगन्ध अरस अस्पर्श १४, गुण से चलन सहायक गुण १५, द्रव्य से अधर्मास्तिकाय १६, क्षेत्र से चौदह राजलोक प्रमाण १७, काल से अनादि अनन्त १८, भाव से अवर्ण अगन्ध अरस अस्पर्श १९, गुण से स्थिर सहायक गुण २०, द्रव्य से ... २१, क्षेत्र से

लोकाऽलोक प्रमाण २२, काल से अनादि अनत २३, भाव से अवर्ण अगध अरस अस्पर्श २४, गुण से अवकाशदायक गुण २५, द्रव्य से कालद्रव्य २६, क्षेत्र से ढाई द्वीप प्रमाण २७, काल से अनादि अनत २८, भाव से अवर्ण अगंध अरस अस्पर्श २९ और गुण से वर्त्तना लक्षण, समय, आवली, मुहूर्त्त आदि ३०

रूपी अजीव के वर्ण ५, गन्ध २, रस ५, स्पर्श ८ और सस्थान ५ ये पचीस मूल भेद हैं। इनके पाचसौ तीस भेद इस प्रकार होते हैं—

काला वर्ण में गध २, रस ५, स्पर्श ८, सस्थान ५, एव २० भेद हुए हैं। इसी तरह नीले वर्ण के २०, रक्त वर्ण के २०, पीले वर्ण के २०, सफेद वर्ण के २० ये पाचों वर्ण के सब मिलकर सौ भेद हुए। वर्ण में वर्ण नहीं पाया जाता।

सुरभिगध में वर्ण ५, रस ५, स्पर्श ८, सस्थान ५ एव २३, इसी तरह दुरभिगध में भी २३ भेद पाये जाते हैं। दोनो मिलकर ४६ भेद हुए।

तिक्तरस में वर्ण ५, गध २, स्पर्श ८, सस्थान ५ एव २०, इसी तरह कटुक, कसायला, आम्ल, मधुर इन चारों रसों के भी बीस बीस भेद गिनने से पाचो के सो भेद हुए।

गुरुस्पर्श में वर्ण ५, गध २, रस ५, स्पर्श ६, सस्थान ५, एव २३ इसी तरह लघु, कोमल, खर्दर, शीत, उष्ण, स्निग्ध

और रूक्ष स्पर्श में भी तेईस तेईस भेद गिनने से आठों स्पर्श के १८४ भेद हुए। स्पर्श में प्रतिपक्षी एक स्पर्श नहीं लेना चाहिये।

त्रिसमस्थान में वर्ण ५, गन्ध २, रस ५, स्पर्श ८ एवं २० भेद इसी तरह चतुरस्र, वृत्त, आयत, परिमण्डल इन चार संस्थान में भी बीस बीस भेद गिनने से पांचों रसों के सौ भेद हुए।

इस प्रकार अरूपी अजीव के ३०, रूपी अजीव में वर्ण के १००, गन्ध के ४६, रस के १००, स्पर्श के १८४ और संस्थान के १०० ये सभी मिलकर के अजीव के ५६० भेद समझना चाहिये।

१०८ सामायिक मे ईर्यावही का निर्णय—

जिस प्रकार शरीर-शुद्धि के वास्ते स्नान करते समय चारों ओर से वायु के साथ में आते हुए कचरे को रोकने की प्रथम आवश्यकता है। उसी प्रकार सामायिक में भी सावद्य-योगाश्रवरूप आते हुए कचरे को रोकने के लिये प्रथम सामायिक दंडक उच्चरने की आवश्यकता है और जिस प्रकार चारों तरफ से आते हुए कचरे को रोके विना स्नान करना व्यर्थ है, उसी प्रकार सामायिक दंडक उच्चार किये विना ईरियावही करना निरर्थक है। इसीसे अनेक शास्त्रकार गणधर और प्रामाणिक-बहुश्रुताचार्योंने ने सामायिक दंडक उच्चार किये बाद ईरि-

जो लोग श्रीमहानिशीथसूत्र के 'अप्पडिकताए ईरियावहिआए न कप्पइ चेव किंचि वि चेइयवंदण-सज्झायज्झाणाइय काउं'—ईरियावही पडिकमे बिना चैत्यवन्दन, स्वाध्याय, ध्यान आदि कुछ भी नहीं कल्पता। इस पाठ के आधार से प्रथम ईरियावही करके बाद में सामायिक-दंडक उच्चरने का आग्रह करते हैं सो ठीक नहीं। क्योंकि महानिशीथसूत्र का पाठ प्रायिक है। यदि ऐसा नहीं माना जाय, तो आगे जिन सूत्रों-ग्रन्थों के प्रमाण लिखे जायगे उनके निर्माता आचार्योंने महानिशीथसूत्र के कथन का जानते हुए भी सामायिक दंडकोच्चार के बाद ईरियावही पडिक्कमनी क्यों लिखी?, इतना ही क्यों? बल्कि, चैत्यवन्दन के विषय में भी—

उत्कृष्टा चैत्यवन्दना ऐर्यापथिकी प्रतिक्रमणपूर्विकैव भवति, जघन्यमध्यमे तु चैत्यवन्दने ऐर्यापथिकी प्रतिक्रमणमन्तरेणापि भवन्तीति।

—यह उत्कृष्ट चैत्यवन्दना ईरियावही प्रतिक्रमणपूर्वक ही होती है, परन्तु जघन्य और मध्यम चैत्यवन्दना ईरियावही प्रतिक्रमण के बिना भी होती है।

इस प्रकार प्रवचनसारोद्धारवृत्ति जैसे माननीय ग्रन्थ की आज्ञा पाई जाती है। अतएव महानिशीथसूत्र की आज्ञा एकान्तिक नहीं, किन्तु प्रायिक है। वास्तव में शास्त्र की प्रवृत्ति सामान्य और विशेष से होती है और सामान्य शास्त्र से विशेष

शास्त्र बल्वान् होता है। कहा भी है कि '**सामान्य शास्त्रनो नून, विशेषो बलवान् भवेत्।**'

महानिशीथसूत्र का कथन चैत्यवन्दन, स्वाध्याय और ध्यान आदि बहुत क्रिया विषयक होने से सामान्य, और आवश्यक बृहद्वृत्ति आदि ग्रन्थों का कथन केवल सामायिक आश्रित होने से विशेष है। इसमे सामायिक के विषय मे महानिशीथसूत्र की अपेक्षा आवश्यकवृत्ति आदि ग्रन्थों का कथन विशेष मान्य होगा। क्योंकि महानिशीथसूत्र में सामायिक का नाम प्रकट नहीं है और आवश्यक आदि सूत्रों में सामायिक का नाम प्रगट है। अतः प्रगट को छोड कर अप्रगट का ग्रहण करना युक्तिगम्य नहीं है। युक्तिगम्य वही कहाता है कि शास्त्रकारोने जो विधि नाम ले करके प्रतिपादन की है, उसको उसी मुताबिक करना।

शास्त्रावलोकन से साफ जान पडता है कि जैनागमानुसार प्राचीनाचार्योंने अपने रचित ग्रन्थों मे सामायिक-दंडकोच्चार के बाद ही ईरियावही पडिक्कमना लिखा है। उन सामायिक सूत्र-ग्रन्थों के प्रमाण-पाठ इस प्रकार है—

(१) एयाए विहीए तिविहेण साहूणो णमिऊण पच्छा सामाइय करेइ-करेमि भंते! सामाइय सावज्ज जोग पच्चक्खामि जाव नियम पज्जुवासामि त्ति उच्चरिऊण पच्छा ईरियावहियाए पडिक्कमति, पच्छा आलोएत्ता वंदति आयरियाइ जहा राय-णिए, पुणो वि गुरु वंदित्ता पडिलेहित्ता णिविट्ठो पुच्छति पढति वा।

—इस विधि से (साधु के पास जाकर) त्रिविधयोग से साधुओं को वन्दन करके 'करेमि भंते ! सामाइयं' इत्यादि पाठ से सामायिक-दंडक उचर, बाद ईरियावही पडिक्कमण करे, फिर (आगमन की) आलोचना करके आचार्य आदि रत्नाधिक साधुओं को वन्दन करे बाद में फिर भी गुरु को वंदन और (भूमि) प्रमार्जन करके बैठे (सूत्रार्थ) पूछे अथवा पढ़े।

आवश्यकसूत्रबृहट्टीका।

(२) इड्ढिपत्तो सामाइयं करेइ, अणेण विहिणा-करेमि भंते ! सामाइयं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जाव नियमं पज्जुवासामि त्ति काऊण पच्छा ईरियं पडिक्कतो वंदित्ता पुच्छति पढति वा।

—ऋद्धिप्राप्त श्रावक सामायिक करे (तो) इस विधि से (विधिपूर्वक) 'करेमि भंते !' इत्यादि सामायिक पाठ उचर के ईरियावही पडिक्कमन करे फिर गुरु को वन्दन करके बैठे सूत्रार्थ पूछे या पढ़े पढ़ावे।

हारिभद्रीय-आवश्यक टीका।

इसका आशय यह प्रगट हुआ कि सामायिक करनेवाले श्रावक दो तरह के होते हैं। प्रथम ऋद्धिप्राप्त-राजा, अमात्य आदि और दूसरे ऋद्धिरहित-साधारण स्थितिवाले सामान्य गृहस्थ। ऋद्धिप्राप्त श्रावकों को अपनी योग्यता के अनुसार शासनोन्नति के लिये भारी समारोह से साधुओं के पास जाकर ही सामायिक करना चाहिये। साधारण स्थितिवाले सामान्य गृहस्थों

को फुरसत मिलने पर निर्विघ्न स्थान में सामायिक कर लेना चाहिये।

सामान्य गृहस्थों को साधुओं की जोगवाई मिलने पर घर में ही सामायिक लेकर यतना से साधु के पास जाना और घर में ली हुई सामायिक को साधु साक्षिक करके फिर से सामायिक-दंडक उचरना चाहिये। परन्तु यह ध्यान रखना जरूरी है कि रास्ते में किसीसे विवाद, देनदारी के कारण क्लेश होने की संभावना न हो, तभी घर में सामायिक लेकर साधु के पास जाना ठीक है, अन्यथा नहीं। यदि पूर्वोक्त कारण उपस्थित होने की संभावना हो तो घर पर ही सामायिक करना अथवा सामायिक लिये बिना ही साधु के पास जाके सामायिक करना चाहिये।

जो गृहस्थ अपने घर से सामायिक लेकर साधु के समीप आवे वह प्रथम तो स्वयं ली हुई सामायिक को साधुसाक्षिक कर देवे और पीछे गमनागमन की इरियावही पडिक्कमे, इस इरियावही का संबंध सामायिक लेकर किये हुए गमन के साथ है। परन्तु इससे भी ईरियावही पडिक्कमना तो सामायिक-दंडक उचार किये बाद ही सिद्ध है।

(३) अणेण विहिणा गतूण तिविहेण साहुणो णमिऊण सामाइय करेइ-' करेमि भंते ! ' एवमाइ उचरिऊण (तओ) ईरियावहियाए पडिक्कइ, आलोएत्ता वंदित्ता आयरियाइ जहारायणिए, पुणरवि गुरु वंदित्ता पडिलेहित्ता णिविट्ठो पढति पुच्छति वा।

—इस विधि से (पोपहशाला आदि स्थानों में) जाकर त्रिविधयोग से साधु को नमस्कार करके सामायिक कर 'करमि भंते' इत्यादि सामायिक दंडक उच्चर के पीछे ईरियावही पडिक्कमण कर, फिर गमनाऽऽगमन की आलोचना करके आचार्यादि यथारत्नाधिक को वंदन करके फिर भी गुरु को वंदन करे और प्रतिलेखना करके बैठे (पुस्तक) पढ़े अथवा सूत्रार्थ पूछे।

यशोदेवसूरिकृत-पचाशकचूर्णि।

(४) वंदिऊण य छोभवंदणेण गुरु, संदिसाविऊण सामाइयमणुकड्ढिय (जहा) 'करमि भंते! सामाइय' (इत्यादि) तओ ईरिया पडिक्कमिय आगमणमालोएइ पच्छा जहाजेट्ठ साहुणो वंदिऊण पढइ सुणइ वा।

—छोभवन्दन से गुरु को वन्दन करके 'संदिसाहु' इत्यादि आदेश माग के 'करमि भंते! सामाइय' इत्यादि सामायिक-दंडक उच्चर के पीछे इरियावही पडिक्कमण कर फिर आगमन की आलोचना करके यथाज्येष्ठ साधुओं को वंदन कर पुस्तक पढ़े अथवा सुने।

विजयसिंहाचार्यकृत-श्रावकप्रतिक्रमणचूर्णि।

(५) सामायिक कार्य श्राद्धैः सदा नोभयसन्ध्यमेव कथं? तद्विधिना खमासमणं दाऊ इच्छाकारेण संदिसह भगवन्! सामाइय मुहपत्ति पडिलेहेमि त्ति भणिय बीय खमासमण

पुव्वं मुहपत्ति पडिलेहिय, खमासमणेण सामाइय सदिसाविय, बीयखमासमणपुव्व सामाइय ठाविन्ति उत्तु खमासमणपुव्व अ-द्धावणयगत्तो पचमगल कड्ढित्ता ' करेमि भंते ! सामाइय ' ऱ्चाइ सामाइयसुत्त भणइ पच्छा ईरिय पडिक्कमइ।

—श्रावकों को सामायिक सदा करना चाहिये, दोनो टाइम ही करना ऐसा नियम नहीं। किस विधि से ? इसके उत्तर में आचार्य विधि दिखाते है कि—खमासमण देके ' इच्छा-कारेण सदिसह भगवन्! सामायिक मुहपत्ति पडिलेहेमि ' ऐसा बोले, फिर खमासमण पूर्वक मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना क-रके इच्छामि खमा० इच्छाकारेण० सामायिक सदिसाविय 'इच्छामि ख० इच्छाकारेण० सामायिक ठाविउ' कहके खमा-समण पूर्वक अर्द्धविनत हो नवकार गिनकर ' करेमि भंते ! सामाइय ' इत्यादि सामायिक सूत्र कहे फिर इरियावही पडि-क्कमण करे।

श्रावकधर्म विधि प्रकरण।

(६) जिणगुत्तो नवयारपुरस्सर काउण निसीहिय प-विट्ठो पासाए य सामाइय कड्ढिय इरिय पडिक्कमिय, जो कोइ इत्थ देवो वा दाणवो वा भूओ वा सो मज्झ अणुजाणेउ भव-णमिण इति भणिऊण सज्झाय काउमाढत्तो।

—जिनगुप्त नामा श्रावक नमस्कार पूर्वक निसीहि कहके जिनमन्दिर में पैठा, (विधिपूर्वक) सामायिक दंडकोच्चार के बाद इरियावही पडिक्कमण करके बोला कि यहाँ पर जो कोई

देव, दानव, भूत आदि हो वह मेरे को आज्ञा देवे ऐसा कहके स्वाध्याय ध्यान में मग्न हुआ।

वर्द्धमानसूरिकृत-कथाकोश।

(७) तओ विशालवेलाए, अत्थमिए दिणायरे।
पुव्वुत्तेण विहाणेण, पुज्जो वंदे जिणुत्तमे ॥ २८ ॥
तओ पोसहसाल तु, गतूण तु पमज्जए।
ठावित्ता तत्थ सूरिं तु, तओ सामाइयं करे ॥ २९ ॥
काऊण य सामाइयं, इरियं पडिकमियगमणामालोए।
वंदित्तु सूरिमाइ, सज्झायावस्सयं कुणइ ॥ ३० ॥

—विशालवेला में आधा सूर्यमंडल अस्त होने के पूर्व (अन्तर्मुहूर्त्तविशेष दिन बाकी रहते) पूर्वोक्त विधान से जिनेश्वरों को फिर से वन्दन किये बाद पोषधशाला में जाके (भूमि) पूंज कर आचार्य—स्थापना स्थापे, फिर विधिपूर्वक करेमि भंते! इत्यादि पाठ से सामायिक दंडक उच्चर के पीछे इरियावही पडिक्कम के गमन की आलोचना और आचार्य आदि रत्नाधिकों को वंदन कर स्वाध्याय या आवश्यक करे।

श्रावकदिनकृत्य।

इन सात प्रमाणों के अलावा आवश्यकचूर्णि, आवश्यक लघुवृत्ति योगशास्त्र, नवपदप्रकरणवृत्ति, नवपदविवरण, धर्मसंग्रह आदि अनेक प्रामाणिक आचार्यों के रचित ग्रन्थों में सामायिकदंडकोच्चार किये बाद ही इरियावहि पडिकमना लिखा है।

सामायिक कर्त्ताओं को यह भी खयाल में रखना चाहिये कि गुरुवंदन किये विना सामायिक नहीं हो सकती, अतएव सामायिक लेने के पेश्तर गुरुवंदन अवश्य करना चाहिये। गुरुवन्दन के तीन भेद हैं–फेटावंदन, थोभवंदन और द्वादशावर्त्तवंदन। हाथ जोड कर मस्तक नमाने से फेटावंदन, दो खमासमण पूर्वक पञ्चाङ्ग नमस्कार करने से थोभवंदन और खमासमण पूर्वक जिसमें दो वांदणा व अब्भुठिओ का पाठ कहा जाय वह द्वादशावर्त्त वन्दन होता है। सामायिक के पेश्तर निष्कारण द्वादशावर्त्त वन्दन से गुरु को वांद लेना चाहिये। यदि कोई कारण हो तो सामान्य दो वन्दनों से भी गुरुको वांद लेने में किसी तरह की हरकत नहीं है। परन्तु गुरुवंदन किये विना सामायिक करना ठीक नहीं है। शास्त्रकारों की आज्ञा भी है कि तिविहेण साहुणो णमिऊण पच्छा सामाइय करेइ। इत्यलं विस्तरेण।

सूत्रानुसारि सुगम यह, बोल एकसौ आठ।
पठन पाठनाभ्यासते, कटे कर्म की गाठ ॥ १ ॥
अब्द नैन वेद निधि शशि, सूर्यवार सुखकारि।
राजेन्द्रसूरि रचित यह, सरस सरल हितकारि॥२॥

श्रीराजेन्द्रसूरि-जैनग्रन्थमाला के ...

१ श्रीकमबोध-प्रभाकर
२ राइदेवसिय-प्रतिक्रमण
३ जन्ममरणसूतक निर्णय
४ स्त्रीशिक्षण-हिन्दी
५ श्रीपंचप्रतिक्रमण (पुस्तोत्र सहित)
६ राजेन्द्रसूरिगुणाढ्य-संग्रह
७ राइ देवसियपडिक्कमण (मोटे अक्षर)
८ पीतपटाग्रह-मीमांसा और निक्षेप निबंध
९ संक्षिप्त-जीवनचरित (श्रीधनचन्द्रसूरिजी
१० अष्टप्रकारीपूजा (श्रीराजेन्द्रसूरिजी की)
११ जीवभेदनिरूपण (हिन्दी)
१२ सप्तव्यसन परिहार
१३ सविधिसाधुपंचप्रतिक्रमणसूत्राणि
१४ श्रीजैनरहस्यम् (संस्कृत)
१५ जिनगुणमंजूषा (चतुर्थ-भाग)
१६ जिनेन्द्रगुणगानलहरी
१७ उमेदअनुभव (दूसरा, तीसरा संस्करण
१८ जैनर्षिपटनिर्णय (हिन्दी)
१९ एकसौ आठ बोल का थोकड़ा
२० श्रीजैनसुबोध (प्रथम-भाग)
२१ अध्ययनचतुष्टय (दशवैकालिकसूत्र के
अध्ययन शब्दार्थ-भावार्थ सह)
२२ रत्नाकर-पच्चीसी (शब्दार्थ-भावार्थ
२३ श्रीमोहनजीवनादर्श (हिन्दी)
२४ नवपद-पूजा (श्रीराजेन्द्रसूरिजी कृत)

श्री अभिधान ... म

मु० १